पर्यावरण और हम

प्रोफेसर भगवती प्रकाश शर्मा

पेसिफिक एकेडमी ऑफ हायर एज्यूकेशन एण्ड रिसर्च यूनिवर्सिटी

पर्यावरण और हम

प्रोफेसर भगवती प्रकाश शर्मा

अध्यक्ष

पेसिफिक उच्चतर शिक्षा व अनुसंधान अकादमी विश्वविद्यालय

पर्यावरण और हम

लेखक : प्रोफेसर भगवती प्रकाश शर्मा

प्रकाशक

प्रकाशन विभाग

पेसिफिक उच्चतर शिक्षा व अनुसंधान अकादमी विश्वविद्यालय
पी.आई.एम. केम्पस, पेसिफिक हिल्स, एयरपोर्ट रोड, उदयपुर
Contact : 0294 2494506, 2494507, 2492640, 9672970942
Website : www.pacific-university.ac.in

Publisher

Publication Department

Pacific Academy of Higher Education & Research University
PIM Campus, Pacific Hills, Airport Road, Udaipur
Contact : 0294 2494506, 2494507, 2492640, 9672970942
Website : www.pacific-university.ac.in

भूमिका

पृथ्वी का पर्यावरण अनादि काल से मानव जीवन एवं सम्पूर्ण जीव सृष्टि के लिए सतत अनुकूल रहा है। इसीलिये, इस आकाशगंगा के दो अरब से अधिक ग्रह नक्षत्रों में से केवल पृथ्वी पर ही जीवन विद्यमान है। पृथ्वी के धरातल पर उपलब्ध उपजाऊ मिट्टी, शुद्ध जल, वायुमण्डल की शुद्धता व नीरवता और वातावरण के तापमान में सन्तुलन आदि अब तक पृथ्वी पर विद्यमान जीव सृष्टि के लिए सर्वाधिक अनुकूलता लिये हुये रहे हैं। इसके विपरीत आज शुक्र ग्रह के वायुमण्डल में 17.5 प्रतिशत कार्बन डाई आक्साइड होने के कारण, उसकी सतह का तापमान 467 डिग्री सेण्टीग्रेड है। इससे वहाँ किसी प्रकार के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। पृथ्वी पर तो हमारे द्वारा उत्सर्जित की जाने वाली आधी से अधिक कार्बन डाई आक्साइड को पेड़–पौधे सोख लेते हैं। इसलिए हमारे वातावरण का तापमान सतत जीव सृष्टि के लिए अनुकूल बना रहता है। पृथ्वी के घूर्णन का अक्ष तिरछा होने के कारण ही हमारे धुव्रीय प्रदेश ठण्डे रहते हैं और इसलिए उन पर जमें बर्फ के कारण ही पृथ्वी की एक तिहाई सतह आज समुद्र के जल से बाहर निकली हुई है। इस समग्र बर्फ के पिघल जाने पर पृथ्वी पुनः जलमग्न हो सकती है।

इसी प्रकार हमारी मिट्टी में सूक्ष्म जीवाणुओं की प्रचुरता उसकी उर्वरता को बनाये रखने व बढ़ाने में सहायता करते हैं। पृथ्वी पर पाये जाने वाले तीन लाख प्रकार के आवृत्तबीजी (एंजिआस्पर्म) फूलों वाले पेड़–पौधे और डेढ़ लाख प्रकार के अब तक चिह्नित किये जा चुके कीट–पतंग परस्पर अवलम्बित हैं। इनमें जो कीट–पतंग फसलों व फलदार उद्यानों में परागण में सहायक सिद्ध होते हैं, उनका आज हमारी कुल कृषि ऊपज में 15–20 प्रतिशत योगदान है। इस प्रकार हमारे वातावरण के सभी घटक परस्पर एक–दूसरे पर अवलम्बित हैं और इनकी पारस्परिक अंतरनिर्भरता में अनादिकाल से अत्यन्त सुकोमल संतुलन बना हुआ है।

लेकिन, आज की औद्योगिक एवं अन्य मानवीय गतिविधियों के कारण पर्यावरण में विद्यमान यह सुकोमल संतुलन गम्भीर रूप से प्रभावित हो रहा है। अतएव हमारे पर्यावरण के संरक्षण के लिये अत्यन्त सजगतापूर्वक प्रयास किये जाने आवश्यक हैं। विगत चार वर्षों से पेसिफिक विश्वविद्यालय पर्यावरण सहिष्णुता क्लब (पेसिफिक यूनिवर्सिटी इको–सेन्सिटीविटी क्लब) इस दिशा में संलग्न है। इसी क्रम में पर्यावरण में विद्यमान विविध प्रकार के सुकोमल पारस्परिक संतुलन व उस सन्तुलन पर आसन्न संकटों को स्पष्ट करने के लिए ही प्रस्तुत पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है। आशा है, पाठक इस जानकारी के आधार पर अपनी जीवन शैली को अधिकतम पर्यावरण सहिष्णु बनाने के दिशा में इस पुस्तिका को उपयोगी पायेंगे।

मई 10, 2017
उदयपुर

भगवती प्रकाश शर्मा
bpsharma131@yahoo.co.in

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय	पर्यावरण संकट का स्वरूप	1
द्वितीय अध्याय	घटती जैव विविधता का संकट	4
तृतीय अध्याय	वृक्षारोपण में जैव विविधता का संतुलन आवश्यक	9
चतुर्थ अध्याय	बढ़ता तापमान और अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों की अपर्याप्तता	13
पंचम अध्याय	कृषि पद्धतियों में पर्यावरण सहिष्णुता	18
छठा	सब प्रकार के प्रदूषण के नियंत्रण की आवश्यकता	21
सातवां अध्याय	जल संरक्षण व वर्षा जल का संचय	29
आठवां अध्याय	अनियंत्रित उपभोग की समस्या	35
नवां अध्याय	समाधान : धारणक्षम उपभोग, धारणक्षम विकास एवं एकात्म मानव दर्शन	36

प्रथम अध्याय

पर्यावरण संकट का स्वरूप

सृष्टि रचना से अब तक हमारे पर्यावरण व पारिस्थितिकी तंत्र के सम्मुख, आज जैसी गंभीर चुनौतियां कदाचित ही कभी उत्पन्न हुई होंगी। विगत शताब्दी में वायुमण्डल के औसत तापमान में हुयी 1 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक की वृद्धि से आज समुद्र का जल स्तर 6–8 इंच बढ़ गया है। इससे पृथ्वी के तटीय क्षेत्रों के कई भाग व अनेक द्वीप जलमग्न हुये हैं। कई पादप व जन्तु प्रजातियाँ भी विलोपित हुयी हैं। फसलों की उत्पादकता प्रभावित हुयी है। इस संबंध में पर्यावरण बदलाव पर कार्यरत अन्तर्शासकीय पैनल (Intergovernmental Panel on Climate Change) द्वारा भी उत्तरोत्तर जिन गंभीर से गंभीरतम शब्दों में चेतावनियाँ जारी की जा रही हैं, वे अत्यंत चिंताकारक हैं। विगत 100 वर्षों में बढ़े तापमान के कारण पिघलते हिमनदों (ग्लेशियर) व ध्रुवीय बर्फ के पिघलने से समुद्र का जल स्तर जो 6–8 इंच बढ़ गया है, वही अगले 100 वर्षों में 36 इंच बढ़ सकता है, यदि तापमान इसी गति से बढ़ता रहेगा तो पृथ्वी के समग्र बर्फ के पिघल जाने पर हमारी पृथ्वी पुनः जलमग्न हो जाएगी।

पर्यावरण परिवर्तन पर कार्यरत अन्तर्राष्ट्रीय पैनल की हाल की चेतावनी विश्व के संपूर्ण जनजीवन और समस्त जीव सृष्टि के लिये गंभीर संकटों के प्रति आगह करने वाली है। विश्व के 120 देशों के प्रतिनिधि के रूप में कार्यरत इण्टर गर्वमेन्टल पैनल ऑन क्लाइमेट चेन्ज, ने **विश्व के बढ़ते तापमान, पिघलते हिमनदों और बढते सामुद्रिक जलस्तर के बारे में गंभीर चेतावनी दी है।** विश्व के बढते तापमान के कारण दक्षिणी गोलार्द्ध में कृषि फसलों के जल्दी पक जाने से फसलों की उत्पादकता में भारी गिरावट आ सकती है और भारत सहित दक्षिणी गोलार्द्ध के कई देशों में खाद्य संकट उपजने की संभावनाएँ बढ़ जायेंगी। इस अन्तर्राष्ट्रीय पैनल के ताजा प्रतिवेदन के अनुसार पिछले 50 वर्षों में पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में बर्फ की मात्रा आधी रह गई है। ऐसा भी अनुमान है कि आगामी 20 से 25 वर्षो में तापमान इसी तरह बढ़ता रहा तो, हिमालय के हिमनद पिघल सकते हैं और गंगा नदी मौसमी नदी में बदल सकती है। यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ 20 वीं शताब्दी में वातावरण के तापमान में वृद्धि के कारण समुद्र का जलस्तर प्रतिवर्ष 1.8 मि.मी. बढ़ रहा था, वहीं हाल के वर्षों में समुद्र का जलस्तर अब 3.2 मि.मी. वार्षिक की दर से बढ़ रहा है। बढ़ते तापमान से वायु मण्डल की नमी या आर्द्रता को धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है। प्रति एक डिग्री तापमान वृद्धि से वायुमण्डल में आर्द्रता 7 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। कुछ समय पूर्व में उड़ीसा व आन्ध्र प्रदेश में आये हुए चक्रवातों से लेकर अनेक पर्यावरणीय आपदाऐं इस बढ़ते हुए तापमान का ही परिणाम रही हैं।

वैश्विक वातावरण में बढ़ रही इस विषमता के परिणामस्वरूप जन जीवन व सम्पूर्ण जीव सृष्टि के लिये उपजते संकटों के प्रति आज सारा विश्व गम्भीर रूप से चिन्ताग्रस्त है। इन्हीं चिन्ताओं के चलते प्रति वर्ष हो रहे 1992 के क्योटो प्रोटोकॉल व 2015 के पेरिस समझौते को छोड़ कर कोई सार्थक पहल नहीं हो पायी है। पेरिस समझौते में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी की जो प्रतिबद्धतायें विविध राष्ट्रों ने की हैं उनसे भी तापमान में औद्योगीकरण प्रारम्भ होने के बाद हुयी वृद्धि को 2 डिग्री सेण्टीग्रेड की सीमा में रख पाना असम्भव होगा। इन प्रतिबद्धताओं के बाद भी तापमान 3.6 से 4.8 डिग्री सेण्टीग्रेड तो बढ़ेगा। इसके अत्यन्त गम्भीर दुष्परिणाम होंगे। संयुक्त राष्ट्र के वातावरण परिवर्तन पर हो रहे आधारभूत सम्मेलनों (यू.एन., फ्रेमवर्क कन्वेशन ऑन क्लाइमेट चेन्ज) में कोई सार्थक समझौता नहीं हो पाया है। अनियंत्रित उपभोग एवं उत्पादन केन्द्रित आर्थिक वृद्धि की होड़ में, बढ़ रहे ऊर्जा व अन्य संसाधनों के उपभोग से, आज जल, थल एवं वायु सभी गम्भीर रूप से प्रदूषित हो रहे हैं एवं धरती पर विद्यमान अधिकांश

प्राकृतिक संसाधन आगामी चालीस से सत्तर वर्षो में चुकते चले जायेंगे। कार्बन डाइआक्साइड सहित विविध ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन से वातावरण का तापमान बढ़ रहा है, श्वसन तंत्र सम्बन्धी रोग बढ़ रहे हैं एवं पृथ्वी की रक्षा कवच रूपी ओजोन की परत का क्षरण हो रहा है। वायुमण्डल की ओजोन परत के क्षरण से सूर्य की पराबैंगनी किरणें वातावरण के तापमान को और तेजी से बढ़ायेंगी और चर्म कैन्सर सहित कई नवीन रोगों को जन्म देंगी। इस बढ़ते तापमान से गलते हिमनद व पिघलती ध्रुवीय हिम परत एक ओर तो समुद्र के जल स्तर को इतना बढ़ा देंगी कि कई नगर एवं द्वीप जल मग्न हो जायेंगे। दूसरी ओर हिमनदों के पिघल जाने से गंगा जैसी सदानीरा नदियाँ सूखती चली जायेंगी और उच्च तापमान पर, फसलों के अल्पावधि में ही पक जाने से उनकी उपज घटेगी और इससे गम्भीर खाद्य संकट उत्पन्न होगा।

गम्भीर प्रदूषण के कारण विगत पूरी शताब्दी (1901 से 2000) की तुलना में पिछले एक दशक (2000–2009) की ग्रीष्म ऋतु, सर्वाधिक गरम रही है। वर्षा में अनियमितता जनित क्रमिक अकाल व बाढ़ें, समुद्री तूफानों की बढ़ती आवृत्ति व व्यापकता, महासागरों से लेकर छोटे–छोटे जलाशयों एवं भू गर्भीय जल पर्यन्त सभी जल संसाधनों का प्रदूषण होता चला जा रहा है। भारत में स्वाधीनता के समय प्रति व्यक्ति वार्षिक जल उपलब्धता 5000 घनमीटर थी। वह घट कर आज 2000 घन मीटर से भी अल्प रह गया है। बढ़ता प्रदूषण, रासायनिक कृषि से बंजर होती भूमि एवं त्वरित निर्वनीकरण आदि सम्पूर्ण जीव सृष्टि के अस्तित्व के लिये चुनौती बनते जा रहे हैं। विगत 50 वर्षों में 120 करोड़ हेक्टर कृषि योग्य भूमि, जो पृथ्वी के कुल धरातलीय क्षेत्रफल का लगभग 9 प्रतिशत है, ऐसी बंजर भूमि में बदल गयी है जिसमें अब किसान के लिये खेती करना सम्भव नहीं रहा है। केवल 1990–95 के बीच छः वर्ष की अवधि में ही 5.6 करोड़ हैक्टेर क्षेत्रों का निर्वनीकरण हुआ है। आज विकासशील देशों में 80 करोड़ व विकसित देशों में 3.4 करोड़ लोग खाद्य असुरक्षा में जूझ रहे हैं। भारत में भी 34 करोड़ लोग आज खाद्य संकट से ग्रस्त है। विगत 25 वर्षो में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता में भी 30 प्रतिशत की कमी आयी है और वर्ष 2050 तक विश्व की 42 प्रतिशत जनसंख्या जल की अपर्याप्त उपलब्धि की शिकार हो जायेगी। विश्व के कुछ प्रमुख देशों में औसत जल उपलब्धि किस प्रकार घटेगी यह तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट है। इसी घटती जल उपलब्धि से कृषि, उद्योग सहित सभी प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्त्ति होनी है।

पर्यावरण परिवर्तन पर कार्यरत अन्तर्शासकीय पैनल द्वारा जारी चेतावनियों के अब गम्भीर दुष्परिणाम भी दिखलायी देने लगे हैं। वातावरण के तापमान में निरंतर हो रही वृद्धि, वायु, जल व मिट्टी का सतत् बढ़ता प्रदूषण, बढ़ते शोरगुल से वातावरण की नीरवता का नाश, बढ़ता विकीरण जनित प्रदूषण, अनेक जीव प्रजातियों का विलोपन, गहराता जल संकट, भूमि का निरन्तर बंजर होते चले जाना और पर्यावरण विक्षोभ जनित प्राकृतिक आपदाएँ, उत्तरोतर गंभीर रूप ले रहीं हैं। भारी मात्रा में खनिजों के विदोहन से अत्यंत गहराई तक पृथ्वी की परतें जर्जर होती जा रहीं हैं और अनेक खनिज पदार्थ भी विलोपन की ओर बढ़ रहे हैं। भूगर्भ के जल का स्तर और नदियों में वर्ष भर बहने वाले जल का प्रवाह भी सतत घट रहा है। कई वर्ष भर बहने वाली नदियाँ या वर्ष में पूरे 10 माह या अधिक अवधि तक बहने वाली नदियाँ व जल प्रपात बरसाती नालों में बदल रहे हैं। पारिस्थितिकीय असंतुलन के कारण वन्य जीवन की आहार श्रृंखला समाप्त होती जा रही है। आक्रामक खरपतवारों और अनेक मानवीय गतिविधियों के कारण पृथ्वी की जैव विविधता में भी तेजी से गिरावट आ रही है। कृषि के मित्र कीटों के विलोपन, बढ़ते तापमान व सुपर पेस्ट कही जाने वाली बीमारियों से कृषि की उत्पादकता घट रही है। विदेशी संकर नस्ल के गौ वंश के ए–1 प्रकार के दूध से भारत मधुमेह, ह्दय रोग व बाल मनोविकार सहित अनेक बीमारियाँ महामारी की गति से बढ़ रही हैं। असन्तुलित रासायनिक कृषि से चर्म रोग व कैंसर जैसी अनेक घातक बीमारियाँ बढ़ रही हैं। जैव रूपान्तरित फसलों (जी.एम. फसलों अर्थात जेनेटिकली मोडिफाइड फसलों) से समग्र प्राकृतिक जैव द्रव्य के स्थायी रूप से प्रदूषण का

संकट बढ़ रहा है। घातक औद्योगिक व घरेलू अपशिष्टों का विसर्जन एक बड़ी समस्या बन रहा है। हमारी बदलती जीवन शैली के कारण और भी अनेक प्रकार के पारिस्थितिकीय व पर्यावरणीय संकट व रोग बढ़ते ही जा रहे हैं।

विविध फसलों के परागण में सहायक एवं फसलों पर होने वाले कीटों के प्रकोप के जैविक नियंत्रण में मददगार, फसल, मित्र कीट–पतंगों का अत्यंत तेजी से विलोपन हुआ है। वनस्पतियों व जीव–जन्तुओं की अन्य भी अनेक प्रजातियों का तेजी से विलोपन हो रहा है। इसी प्रकार जल के अतिदोहन से अनेक क्षेत्र भूगर्भ के जल स्तर की दृष्टि से डार्क जोन में बदल रहे हैं। वायु प्रदूषण व जल प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है। मिट्टी के कटाव के कारण वन क्षेत्रों व गोचर भूमि सहित अधिकांश क्षेत्रों में भूमि बंजर हो रही है। पेस्टीसाइड्स के अविवेकपूर्ण उपयोग से मिट्टी व जल स्रोत दोनों ही प्रदूषित हो रहे हैं।

विविध प्राकृतिक संसाधन चुकते जा रहे हैं। कई वनस्पति व जीव–जन्तुओं की प्रजातियाँ विलोपित होती जा रही हैं। इन सबके फलस्वरूप प्रकृति में कई प्रकार के असंतुलन उत्पन्न हो रहे हैं।

द्वितीय अध्याय

घटती जैव विविधता का संकट

पृथ्वी पर विद्यमान पेड़–पौधों व सूक्ष्म जीवियों से लेकर कीट–पतंगों व मनुष्य पर्यन्त सभी जीवधारी एक बड़ी सीमा तक परस्पर अवलम्बित हैं। इसलिये सृष्टि में विद्यमान समस्त जीव प्रजातियों के अस्तित्व का संरक्षण करना अति आवश्यक है। यथा आज पेड़–पौधों में परागणकर्ता कीट–पतंगों, तितलियों व मधुमक्खियों आदि की संख्या में कमी के कारण फसलों की उत्पादकता प्रभावित होने लगी है। इसी प्रकार गिद्धों के विलोपन के फलस्वरूप आज सर्वत्र मृत पशु सड़ते रहते हैं। अन्यथा गिद्धों के रहते मृत पशु उनका आहार होने से 1–2 दिन में मृत पशुओं के अस्थि अवशेष ही बचते थे। पशुओं को डायक्लोफेनाक इंजेक्शन लगने के तत्काल बाद उस पशु की मृत्यु हो जाने के बाद, उसके शरीर में उस (डायक्लोफेनाक) इंजेक्शन का अवशेष होने पर, उसका मांस गिद्धों द्वारा खाने से उनके गुर्दे (कीडनी) खराब हो जाने लगी। इसलिये उत्तर भारत से गिद्ध ही विलोपित हो गये। वैसे अब सरकार ने पशु चिकित्सा में इस इंजेक्शन का उपयोग रोका है। लेकिन इसमें हुये विलम्ब के कारण गिद्ध तो लुप्त हो ही गये। अब इस रोक का भी कोई अर्थ नहीं रह गया है।

डायनोसोर, चार दांत वाले हाथी व चीते से लेकर क्षुद्र कीट– पतंगों तक असंख्य जन्तुओं का और वनस्पति जगत में घास व तृण की अनेक प्रजातियों से लेकर कई प्रकार के कन्दमूल, अन्न व अन्य वनस्पतियों का भी तेजी से विलोपन हुआ है। वनों में भी वन्य प्राणियों के लिए आहार व जल का गंभीर संकट उत्पन्न हुआ है और वन भी अपने पारिस्थितिकी तंत्र से वंचित होते जा रहे हैं। भारत के वनों में इस संकट की गंभीरता सर्वाधिक है।

विदेशी आक्रामक खरपतवारों यथा विलायती बबूल (प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा) व कांग्रेस घास अर्थात गाजर घास (पार्थेनियम) के प्रसार से असंख्य पौधों, झाड़ियों व वृक्षों की प्रजातियों व कीट प्रजातियों पर कई क्षेत्रों से विलोपन के संकट के बादल मण्डरा रहे हैं। नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लाण्ट जेनेटिक रिसॉर्स के अनुसार भारत में 82700 प्रकार की चावल की प्रजातियां थीं। बैंगन जैसी सामान्य सब्जी की आज भी 1600 प्रजातियां हैं। इसी प्रकार गेहूं, जौ, सरसों, तिल, लौकी, खरबूजा, ककड़ी, बैंगन, केला, आम सभी फसलों की भी अनगिनत प्रजातियां रही हैं। पूर्व में माल, चीणा आदि कई प्रकार के अनाज, दलहन कन्द–मूल आदि की जो प्रजातियां होती थी, उनमें से कई आज विलोपित होती चली गयी हैं। उनमें कीट प्रतिरोध क्षमता से लेकर विविध विशिष्टतायें होती थी। इसलिये आज जिस गति से विविध कृषि व बागवानी फसलों की प्रजातियों व प्राकृतिक वनस्पतियों का विलोपन हो रहा है यह अत्यन्त चिन्ताजनक है।

हमारे पर्यावरण में जैव विविधता का महत्व

पृथ्वी पर विद्यमान वर्तमान जैव विविधता का विचार करें तो केवल पुष्प वाले अर्थात एंजियोस्पर्म श्रेणी के पौधों की प्रजातियां ही 3 लाख से अधिक हैं और इन पादप प्रजातियों पर सहजीवी कीट–पतंगों की प्रजातियां डेढ़ लाख से अधिक हैं। हमारे जनजीवन में इन पौधों व कीट प्रजातियों के पारस्परिक सहजीवन के महत्व को देखें तो आज, विविध कृषि फसलों की लगभग 15–18 प्रतिशत उत्पादकता इन फसलों के पुष्पों में 'परागण करने वाले कीटों' अर्थात इनसेक्ट पॉलिनेटर्स के कारण है। बादाम जैसी कई पादप प्रजातियों में तो शत–प्रतिशत परागण ही ऐसे परागणकर्ता कीटों द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार असंख्य कीट प्रजातियों का जीवन भी विविध पुष्पों के पराग या इन पौधों के फल, छाल आदि पर अवलम्बित होता है। विविध फसलों एवं फलों के बगीचों की उत्पादकता, इन परागणकर्ता कीटों यथा मधुमक्खियों, तितलियों, पतंगों, भ्रमरों, शलभ आदि द्वारा किये जाने वाले परागण पर निर्भर होने से इन कीटों की विविधता व सघनता आज हमारी खाद्य सुरक्षा के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। विविध

फसलों व फलों के बगीचों एवं कीट पतंगों के जीवन चक्र के इस परस्पर अवलम्बन को देखते हुये, हमारे आहार चक्र के संरक्षण और खाद्य सुरक्षा हेतु कृषि को धारणक्षम बनाये रखने के लिये आज समग्र पारम्परिक जैव विविधता का संरक्षण परम आवश्यक हो जाता है। इन विविध फसलों में परागण करने वाली इन मधुमक्खियों, तितलियों व अन्य कीट–पतंगों की अनेक प्रजातियाँ, अपने आहार व आवास हेतु, आधा या पौन किलोमीटर से आगे भी नहीं जा पाती हैं। ऐसी छोटी सी परिधि में ही भ्रमण में सक्षम कीटों के अस्तित्व के रक्षण के लिये इतनी छोटी परिधि में ही सब ऋतुओं व महीनों में पुष्पित व फलित होने वाले पेड़–पौधों का होना भी परम आवश्यक हो जाता है।

इसी प्रकार अनेक फल भक्षी पक्षी भी 2–3 या 5 किलोमीटर से दूर नहीं जा पाते हैं। उनके लिये भी ऐसी छोटी सी परिधि में ही ऋतुचक्र से, प्रत्येक मौसम व प्रत्येक माह में फल देने वाले पेड़–पौधों का होना परम आवश्यक है। प्रकृति में अनादिकाल से पारम्परिक रूप से ऐसी जैव विविधता सभी क्षेत्रों में पायी जाती रही है जिससे कीट पतंगों व पक्षियों का वर्ष भर प्रतिमाह व प्रति दिन आहार हेतु पुष्प व फल सुलभ हो जायें। लेकिन, विगत 5–6 दशकों में हुये वन विनाश के बाद आज प्रकृति प्रेमवश किये जाने वाले पौधारोपण में अकसर ऐसी वांछित जैव विविधता का अभाव देखा जाता है। सामान्यतया आजकल हो रहे वृक्षारोपण में नीम की ही सर्वाधिक बहुलता होती है या कुछ सौन्दर्यवर्द्धक पेड़ों यथा गुलमोहर, अमलतास, कचनार, शीशम आदि की भी बहुलता देखी जाती है। इस प्रकार के एकाकी पौधारोपण जिसे मोनो–कल्चर कहा जाता है या सीमित प्रकार के फलरहित व मात्र सौन्दर्यवर्द्धक प्रजातियों के वृक्षारोपण के कारण प्रकृति में अपूरणीय पारिस्थितिकीय असन्तुलन उत्पन्न हो रहा है। अनेक पर्यावरण–प्रेमी स्वैच्छिक संगठन आजकल पृथ्वी को हरीतिमा युक्त करने के लक्ष्य से कई स्थानों पर पूरी की पूरी नीम परियोजना जैसी एकाकी पौधों के रोपण की भी योजना अपना कर सब दूर प्रचुरता में नीम या किसी एक या सीमित प्रकार के पेड़ों के ही पौधारोपण में संलग्न हो जाते हैं। लेकिन, नीम, अशोक व अमलतास जैसी एकल या सीमित प्रजातियों में से प्रत्येक पर पुष्पों व फलों के आने की अवधि वर्ष में एक बार मौसम के अनुसार लगभग 15–20 दिन की ही रहती है। इसलिये उस अवधि में तो किसी भी स्थान विशेष पर मधुमक्खियों, तितलियों, पतंगों, भृंगों, बीटल्स आदि परागणकर्ता कीटों को अथवा फल भक्षी पक्षियों को पुष्पों का पराग व फलों से आहार मिल जाता है। लेकिन, उसके बाद में कई किलोमीटर तक अन्य वांछित प्रजाति के पेड़–पौधे नहीं होने से कीट व पक्षी आहार के अभाव में बड़ी संख्या में विलुप्त होते चले जा रहे हैं। इसलिये केवल नीम या नीम सदृश किसी एकाकी प्रजाति के वृक्षों के रोपण से सर्वत्र फल भक्षी पक्षियों की संख्या, विगत 2–3 दशकों में घट कर मात्र 10–15 प्रतिशत ही रह गयी है। विविध कीटों का जीवन चक्र भी इन विविध प्रजातियों के पेड़–पौधों पर ही अवलम्बित होने के कारण आज सीमित प्रकार के एवं सजावटी पेड़–पौधे व लताओं की ही बहुलता के कारण विविध कीटों का ह्रास हो रहा है व कीटों के ह्रास के कारण के कीट भक्षी पक्षी भी तेजी से घट रहे हैं। कृषि में कीटनाशी रसायनों अर्थात पेस्टीसाइड्स के अति प्रयोग से फसलों के मित्र कीटों का तेजी से विलोपन हुआ है और कीटों के विलोपन से मोर व बगुले से लेकर टिटहरी पर्यन्त सभी कीट भक्षी पक्षियों का विलोपन हो रहा है। निओनिकोटिनाइड जैसे कीटनाशकों के फसलों पर छिड़काव के बाद उन फसलों से पराग ग्रहण करने वाली मधुमक्खियों में स्मृतिलोप हो जाने से वे अपने छत्तों पर नहीं लौट पाती हैं और इससे यूरोप में भारी मात्रा में मधुमक्खियों का लोप हुआ है। मधुमक्खियों के विलोपन से जब वहाँ कीट परागण में कमी आने से फसलों की उपज घटने लगी तो यूरोप में निओनिकॉटिनाइड श्रेणी के कीट नाशकों पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा इब इन्हीं कीटनाशकों की उत्पादक कम्पनियां भारत में उनके परीक्षण कर रही है। इन परीक्षणों पर तत्काल रोक लगाना आवश्यक है। जैव रूपान्तरित अर्थात जी.एम. फसलें भी इन परागणकर्त्ता कीटों को नुकसान पहुँचाती हैं।

इसी प्रकार घटती जैव विविधता के कारण फसलों के अनेक मित्र कीटों के विलोपन से आज जहाँ

परा–परागण में आयी कमी से फसलों की उत्पादकता में ह्रास हो रहा है, वहीं अनेक पेरासाइटॉइड कहे जाने वाले उन परजीवी कीटों, जिनका जीवन चक्र फसलों को नष्ट करने वाले कीटों व कृमियों पर पूरा होता है, के विलोपन से भी हमारी निर्भरता उत्तरोत्तर, अत्यन्त घातक कीटनाशी रसायनों पर बढ़ती जा रही है। इन कीटनाशी रसायनों से आज चर्म रोग, यकृत विकार व गुर्दो में विकृति, पार्किनसॉनिज्म व कैंसर जैसी अनगिनत असाध्य बीमारियाँ, महामारी की सी तेजी से बढ़ रहीं हैं। बिना पेस्टीसाइड फसलों को कई घातक कीटों से बचाने में सक्षम उपरोक्त पेरासाइटॉइड श्रेणी के कीटों के कई दर्जनों संकुल हैं, जिनका जीवन–चक्र विविध फसलों पर लगने वाले कीटों पर ही पूरा होता है। इसलिये ये फसलें बिना कीटनाशी रसायनों के ही अनादिकाल से इन पेरासइटॉइड कीटों के बल पर सुरक्षित रहती आयीं हैं। इस पेरासाइटॉइड श्रेणी के कीटों के रहते किसी भी फसल या फलों के बगीचों पर उस फसल या फलों को नुकसान पहुँचाने वाले किसी कीट का प्रकोप होने की दशा में, उस कीट प्रकोप–ग्रस्त फसल या उन फलों के वृक्षों में प्रकृति–जन्य ऐसे सुगन्धित जैव रसायनों का संश्लेषण होता रहा है जिनकी सुंगन्ध से वे पेरासाइॅटाइड श्रेणी के परजीवी कीट आकृष्ट होकर आ जाते थे, जो उस फसल या फल के नाशक कीटों को समाप्त कर देते थे और वह फसल या फलों के बगीचे, पेरासाइटॉइड श्रेणी के इन मित्र कीटों के प्रताप से बच जाते थे। लेकिन, विविध फसलों के ये मित्रवत कीट जो उनको नुकसानदेह कीटों से बचाते रहे हैं, उनको आश्रय देने वाले वृक्षों के आस–पास होने पर ही यह जैविक कीट नियन्त्रण सम्भव होता था। इस हेतु केवल एकाकी अथवा मात्र तीन–चार प्रकार के वृक्षों का वृक्षारोपण न कर पारम्परिक रूप से किसी भी क्षेत्र में होते आये सभी विविध पेड़–पौधों को पुनः विकसित करना आवश्यक है पूर्व में वन क्षेत्रों में ही नहीं प्रत्येक गाँव अथवा बस्ती तक में शताधिक या सहस्त्राधिक प्रकार के पादप, क्षुप, लताओं, झाड़ियों व वृक्षों का सम्मिश्रण पाया जाता था, जो हजारों प्रकार के कीट, पतंगों, फसलों के मित्र कीटों व पक्षियों को आवास व आहार सुलभ कराता था। यही विविधीकृत वानस्पतिक सम्पदा सभी प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियों का भी स्रोत होती थी। आज वनों में भी वैसी वानस्पतिक सम्पदा तो दूर तृण व घास तक का अभाव हो जाने से किन्हीं भी वन्य प्राणियों तक के लिये भी आहार की उपलब्धता नहीं रह गई है।

आक्रामक खरपतवारों की समस्या : आजकल तो 'पार्थेनियम' जिसे कांग्रेस घास या गाजर घास कहते हैं और ''प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा'', जिसे विलायती बबूल भी कहा जाता है के प्रसार के कारण अधिकांश क्षेत्रों की जैव विविधता तेजी से विनष्ट हो रही है, चारागाह विलोपित हो रहे हैं और इन आक्रामक खरपतवारों का प्रसार जल संकट का कारण बन रहा है। ये दोनों ही तेजी से फैलने वाले और आक्रामक श्रेणी की खरपतवार कहलाते हैं, क्योंकि ये अन्य वनस्पतियों को नष्ट कर देते या उन्हें पनपने नहीं देते हैं।

प्राचीन पर्वों का महत्व : हमारे यहाँ प्राचीनकाल से ही जैव विविधता संरक्षण को हमारे पर्वों व त्यौहारों तक से जोड़ दिया गया है। इससे वर्ष भर में अवसर विशेष पर विविध वृक्षों व वनस्पतियों के विधान से उनको सरंक्षण प्राप्त होता था। इनमें पेड़–पौधों में अर्क व अपामार्ग से लेकर आम, शमी, आँवला, पीपल, बरगद, उदुम्बर, कदम्ब, पारिजात, जामुन, शहतूत, काञ्चनार, पलाश, अगर, अर्जुन पर्यन्त सहस्त्राधिक पेड़–पौधो के सम्बन्ध में त्योहारिक व पर्व विशेष पर किये जाने वाले विधानों के प्रावधान से समग्र जैव विविधता का संरक्षण व संवर्द्धन होता था। उदाहरणर्थ जब भी शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को बुधवार का संयोग होता था, उसे 'तानना त्रयोदशी' के रूप में मनाने के लिये 13 अनाजों के मिश्रित आटे, 13 प्रकार के दलहनों, एवं तेरह प्रकार की गैर फसली सब्जियों की मिश्रित सब्जी के व्यंजन ही खाने की परम्परा रही है। आज 13 अनाज के नाम गिनाना ही कठिन है। इसलिये उनमें से अधिकांश की खेती तो बन्द हो गयी है। इन अनाजों में माल, चीणा जैसे कई अनाज आज विलोपित ही हो रहे हैं। गैर फसली शाक पुष्पादि की सब्जी में पुनर्नवा से अगस्त पुष्प पर्यन्त अनेक प्रजातियाँ धीरे–धीरे चलन से बाहर हो रही हैं।

पौधा रोपण में विविधता आवश्यक : अतएव आज के समय में जैव विविधता के संरक्षण व पर्यावरण संवर्द्धन हेतु किये जाने वाले वृक्षारोपण में केवल नीम या अशोक, अमलतास, कचनार, शीशम आदि एक या कुछ

प्रजातियों पर ही बल नहीं देकर, उसके स्थान पर हर मौसम में फल व फूल देने में सक्षम शताधिक फलदार पेड़ों यथा नीम आदि के अतिरिक्त मौलसिरी, रायण, पीपल, बरगद, कीकर, भारतीय बबूल, जामुन, शहतूत, पलाश, बेर, शमी, सेमल जैसे सभी प्रकार के पेड़, सभी प्रकार के क्षुप, लतायें, तृण, घासों आदि पर समान रूप से बल देना चाहिये। कई ग्राउण्ड नेस्टिंग श्रेणी की भूमि पर घोंसले बनाने वाली चिड़ियाएँ 2 फीट ऊची झाड़ियों में ही रहती हैं। तितलियों पतंगों के लिये भी ऐसी घास व झाड़ियाँ अत्यन्त उपयोगी होती है। इन वनस्पतियों में से अनेक पेड़–पौधों की जड़े मिट्‌टी की जलधारण क्षमता बढ़ाती हैं व स्वंय भी बड़ी मात्रा में वर्षा जल को धारित कर उसे धीरे–धीरे छोड़ते हुये जल स्त्रोतों में वर्ष भर जलापूर्ति बनाये रखने में सहायक सिद्ध होती हैं। इस प्रकार आज अपने समग्र पारिस्थितिकीय सन्तुलन के संरक्षण हेतु प्रत्येक क्षेत्र विशेष की पारम्परिक जैव विविधता का रक्षण व संवर्द्धन पर्यावरण प्रबन्ध की मुख्य पूर्वावश्यकता है। इस हेतु प्रति वर्ष कहीं भी वृक्षारोपण करने के पूर्व 1000 से भी अधिक प्रमुख प्रकार के पारम्परिक पौधों को सूचीबद्ध कर पौधरोपण हेतु उनकी पौध की अग्रिम व्यवस्था करके वृक्षारोपण करना चाहिये। इसके साथ ही प्रकृति में पायी जाती रही समग्र जैव विविधता को पुनर्प्रस्थापित करने के सब सम्भव प्रयास किये जाने चाहिये।

जैव विविधता व जैव द्रव्यों (Germplasm) की विविधता का महत्व –

(i) प्रकृति में एक ही पौधे की विविध किस्मों में व्यापक अन्तर पाया जाता है। ऐसी सारी किस्में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन किस्मों में यह अन्तर, पारिस्थितिकीय (Phenotype) भी हो सकता है अथवा आनुवांशिकीय (Genotype) भी हो सकता है। सामान्यतया नीम के पौधे में (निम्बोली में) 0.2 से 0.8 प्रतिशत एजाडिरेक्टीन नामक औषधीय तत्व होता है। लेकिन मध्यप्रदेश में भोपाल में 4 नीम के पेड़ ऐसे भी पाये गये हैं, जिनमें 2 प्रतिशत एजाडिरेक्टीन पाया गया है। इन पर सरकार ने सुरक्षा गार्ड लगा रखे हैं, ताकि कोई विदेशी कम्पनी उसके जैव द्रव्य का प्रत्यारोपण कर उस पर पेटेन्ट लेकर शेष विश्व को इसके स्वतंत्र उपयोग से वंचित न कर दे।

(ii) अनेक वन्य प्रजातियों में अत्यन्त विलक्षण गुण भी जैव विविधता के महत्व को बढ़ा देते है। इसी प्रकार अफ्रीका में पाये जाने वाले एक चवले की प्रजाति के कीटाणुरोधी या रोग निरोधक गुण होने से उस पर कोई कीड़ा, फुंद या अन्य फसलों के रोग नहीं होते हैं। अमेरिकी वैज्ञानिकों को यह पता चलने पर उन्होंने उस चवले (Cowper) की प्रजाति में रोग प्रतिरोधक गुण देने वाले वंशाणु या जीन (Gene) को चिह्नित कर उस जीन का मक्का व सोयाबीन में प्रत्यारोपण कर मक्का व सोयाबीन के रोग प्रतिरोधक (Pest Resistent) बीज तैयार कर लिये और उन्हें अपने नाम पेटेण्ट कर लिये। ''जैव विविधता पर वैश्विक सम्मेलन के अनुसार चवले की इस प्रजाति पर स्वत्व, उस अफ्रीकी समाज का है, जिसने इन्हें सहेजा है। लेकिन, विश्व व्यापार संगठनान्तर्गत बौद्धिक सम्पदाधिकारों के अन्तर्गत उस नयी प्रजाति पर स्वत्व या पेटेण्ट उस प्रत्यारोपणकर्ता का हो गया। जैव विविधता पर वैश्विक सम्मेलन (Global Convention on Biodiversity) के क्रियान्वयन की वैसी कोई व्यवस्था नहीं है जैसी विश्व व्यापर संगठन के अन्तर्गत विवाद निवारण अभिकृति (Dispute Settlement Body) है। इसलिये उसका लाभ वह पेटेण्टकर्ता कम्पनी उठा रही है। अफ्रीकी समाज उसमें अपने अधिकारों से वंचित हो गया।

इसी प्रकार एक अमेरिकी खरबूजे पर एक ऐसे फफूंद (Fungus) का प्रकोप हो गया, जिस पर कोई फफूंदरोधी रसायन (anti-fungal pesticide) प्रभावी नहीं हो रहा था। तब एक भारतीय जंगली खीरा ककड़ी में ऐसा वंशाणु (Gene) पाया गया, जिसके प्रत्यारोपण से उस खरबूजे की प्रजाति को बचाया जा सका। अर्थात उस भारतीय खीरा ककड़ी का वह फफूंदरोधी वंशाणु एक अनमोल जैव द्रव्य कहा जा सकता है। इस प्रकार प्रकृति में फैली जैव विविधता एक अनमोल उपहार है, जिसका हर कीमत पर संरक्षण किया जाना चाहिये।

(iii) इसी प्रकार पूर्वोक्त 13 प्रकार के अनाजों में राजस्थान में पाया जाने वाला **'चीणा'** भी विलक्षण गुणवाला अनाज है। उसके आटे का स्वाद गेहूं, जौ या मक्का जितना अच्छा नहीं होता है। लेकिन पुराने समय में उसे

बोकर लोग उसकी फसल को सहेज कर रख देते थे। उस अनाज को अनेक वर्षों तक रखा रखने पर भी उसमें कोई कीड़ा, घुन, इल्ली या अन्य किसी रोग का प्रकोप नहीं होता है। इसलिये जब भी अकाल पड़ता था तब लोग उस संग्रहीत चीणा को उपयोग कर परिवार की खाद्य आवश्यकता की पूर्ति कर लेते थे। इस प्रकार चीणा में कीट या रोग प्रतिरोधकता का गुण उसके जैव द्रव्य को अरबों डालर तुल्य मूल्यवान बना देते हैं। इस प्रकार हमारे अनेक मोटे अनाज, वन्य शाक, फल, कन्द–मूल, दलहन, चावल, तृण आदि खरबों रूपयों व डालरों की निधि है। उन सभी का रक्षण आवश्यक है। इसलिये हमारे मनीषियों ने तानना त्रयादशी, आमला एकादशी, वट पूर्णिमा, शमी (खेजड़ी) पूजा (दशहरे पर) अपामार्ग पूजन, कुशाग्रहणी अमावस्या आदि ऐसे सैंकड़ों पर्वों का विधान किया है।

(iv) **गौवंश की नस्लों से खिलवाड़ :** वैज्ञानिक अनुसंधानों के वर्गीकरण के अनुसार देशी नस्लों की गायों का दूध ए–2 (A2) श्रेणी का होता है, जो हृदय को स्वस्थ रखता है, मधुमेह से बचाता है और बच्चों में मस्तिष्क का बेहतर विकास करता है। विदेशी नस्लों में शत प्रतिशत हाल्स्टीन गायों का दूध ए–1 (A–1) श्रेणी का होता है। जर्सी नस्ल की भी 30–40 प्रतिशत गायों का दूध ए–1 अत्यंत हानिकारक होता है। विदेशी नस्ल की गायों का ए–1 श्रेणी का दूध हृदय रोग कारक है, उससे हृदय की धमनियों में अवरोध आता है। अल्प आयु में मधुमेह या डायबिटीज की समस्या उपजती है। बच्चों में स्वलीनता (Autism) व अन्य प्रकार के मनोविकार पैदा होते हैं। ऐसा भारतीय व यूरो–अमेरिकी नस्लों की गायों के दूध में पाये जाने वाले प्रोटीन (केसीनो प्रोटीन) की संरचना में अन्तर के कारण होता है। दोनों के प्रोटीन में 2 अमीनों एसिड का क्रमांक भिन्न होने से यह अन्तर हो जाता है। भारतीय व अफ्रीकी गायें स्वास्थ्यवर्द्धक ए–2 श्रेणी का दूध देती हैं। अब यूरोप, अमेरिका व आस्ट्रेलिया आदि में तो दूध की थैली पर ही ए–2 चिह्न वाला दूध ही अधिकता से बिकता है। भारत में तो सरकारों व कृषि विश्वविद्यालयों ने अपनी अधिकांश उत्तम नस्ल की गायों को विदेशी संकर नस्लों में बदलवा कर हृदय रोग, डायबिटीज व मनोविकारों को महामारी के रूप में आमंत्रित कर लिया है। आज ब्राजील, भारतीय नस्ल की उत्तम गायों का स्रोत बन कर विश्व भर में ए–2 का अमृत तुल्य दूध देने वाली इन गायों का सबसे बड़ा निर्यातक बन गया हैं। हमारे पास ही हमारी कई नस्लों की गायें नहीं रह गयी हैं। कई नस्ले तो धरती पर ही अब नहीं रहीं। हमारी गायें Bos Indicus या Zebu प्रजाति की हैं। यूरोप व उत्तरी अमेरिकी गायें Bos Taurus प्रजाति की हैं। इनका संकरण भी अनुचित था। स्वाधीनता के समय देश भर में 12 संवर्गों की 57 से अधिक प्रमुख गौवंश की नस्लें सूचीबद्ध थीं। इनके अलावा अन्य भी कई स्थानीय नस्लें थीं। लेकिन आज अब केवल 6–7 नस्लें हीं प्रमुखता से दिखलायी देती हैं। इनको भी हमने रोग कारक दूध वाली विदेशी नस्लों में बदल दिया। जब हमारे कृषि अनुसंधान परिषद को अन्य देशों में किए गए, शोधों का पता चल गया है तो ऐसी स्थिति में तब तो उसे देश में पुनः व्यापक स्तर पर देशी नस्लों के संरक्षण, संवर्द्धन और अनुसंधान पर ध्यान देना चाहिये।

इसी प्रकार जैव रूपान्तरित फसलों या जी.एम. फसलों (जेनेटिकली मॉडिफाइड फसलों) के भावी जोखिमों को देखते हुये, हमारे द्वारा सावधानी करना आवश्यक हो जाता है। कुछ जैव तकनीशियन व जेनेटिक इजीनियरिंग एप्रुवल कमिटी जिस पैमाने पर व जिस गति से जी.एम. फसलों अर्थात जैव रूपान्तरित फसलों (Genetically Modified Crops) की ओर देश को ले जाने को प्रयासरत हैं, उस पर भी व्यापक विचार एवं दीर्घकालिक अनुसंधान आवश्यक है। ये परीक्षण भी बन्द ग्रीन हाउस में ही होने चाहिये। उनके लम्बी अवधि तक पशुओं व मानव खाद्य में भी प्रयोग करने के बाद ही, हमें उस ओर आगे बढ़ना चाहिये।

तृतीय अध्याय

वृक्षारोपण में जैव विविधता का सन्तुलन आवश्यक

पर्यावरण सहिष्णु वृक्षारोपण

वृक्षारोपण?

रूकिए?

कहीं आप एक ही प्रकार के वृक्षों का पौधारोपण कर पर्यावरण असन्तुलन की ओर तो नहीं बढ़ रहे हैं?

पर्यावरण संतुलन के लिए विविध पारम्परिक प्राकृतिक वृक्षों का पौधों, लताओं, तृण, क्षुप आदि उचित सम्मिश्रण आवश्यक है।

वृक्षारोपण में उचित संतुलन का महत्व : वृक्षारोपण करते समय एक या 2–3 प्रकार के या नीम, अशोक या अमलतास आदि का ही पौधारोपण कर देने से क्षेत्र विशेष में पारिस्थितिकीय असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। ऐसा कर देने से पक्षियों, पर्यावरण–मित्र कीटों व पर्यावरण–मित्र सूक्ष्मजीवियों को बारह महीने आहार नहीं मिल पाता है। इसलिए उनकी प्रजातियों व संख्या में भारी गिरावट आ रही है। सामान्य जानकारी के अभाव में कभी–कभी अनेक किमी. तक नीम या किन्हीं एक या दो प्रकार के पेड़ों का ही पौधारोपण कर दिया जाता है। **नीम की निम्बोली वर्ष में 20 दिन से एक माह तक रहती है। उसके उपरांत के काल में अनेक किलोमीटर तक पक्षियों को खाने को कुछ नहीं मिल पाता है। इसलिए अधिकांश पक्षी उसके उपरांत भूख से तड़फ कर प्राण भी छोड़ देते हैं। अतएव वृक्षारोपण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रत्येक आधा किलोमीटर की परिधी में ऋतु चक्र से हर मौसम में फलने वाले पेड़ लगाए जायें।** अनेक पेड़, विविध फसलों व पौधों में निषेचन (Pollination) के लिए सहयोगी कीटों को आश्रय व आहार प्रदान करते हैं।

ऐसे में पर्यावरण के प्रति संवेदनशील सभी व्यक्तियों व समूहों को वृक्षारोपण करते समय सभी प्रकार के पारम्परिक पादपों, झाड़ियों एवं वृक्षों का इस प्रकार के संयोजन (Combination) से रोपण करना चाहिए ताकि वे पर्यावरण में प्राकृतिक सन्तुलन के लिए आवश्यक सभी सूक्ष्मजीवियों, पर्यावरण–मित्र कीटों एवं पक्षियों को आश्रय व आहार प्रदान कर सकें।

इसके अतिरिक्त कई पेड़ यथा पलाश व कई अन्य पौधे, मिट्‌टी की संधारण क्षमता को बढ़ाते हैं। मिट्‌टी की जलधारण क्षमता के कारण ही वर्षा ऋतु के बाद भी नदियां प्रवाहमान रहती है। अनेक पौधे व वृक्ष औषधीय महत्व के होते हैं। इसलिए वृक्षारोपण में मिट्‌टी की जलधारण क्षमता बढ़ाने वाले पौधे, औषधीय महत्व के पौधे, फसलों के मित्र कीटों को आश्रय देने वाले पौधे, मिट्‌टी की उर्वरा शक्तिवर्द्धक सूक्ष्म जीवियों को आश्रय देने वाले पौधे भी पर्यावरण सन्तुलन हेतु महत्वपूर्ण होते हैं। एक बार खाली स्थान में कोई भी एक प्रकार का वृक्षारोपण कर देने के बाद वहां पर कोई पौधारोपण नहीं करता और सदा के लिए वह स्थान पारम्परिक वानस्पतिक सम्पदा से स्थाई रूप से वंचित हो जाता है। इसलिए वृक्षारोपण करने में उपरोक्त बातों के अनुरूप उचित संतुलन आवश्यक है।

पर्यावरण परिशोधन : सामान्यतया पेड़–पौधे पर्यावरण को प्रदूषण करने वाली कार्बनडाइ ऑक्साईड को तो सोखते ही हैं, लेकिन कुछ पेड़–पौधे ऐसे प्रदूषणकारी कार्बनिक व अकार्बनिक रसायनों को भी सोखते हैं, जो अन्य पौधे नहीं सोंख सकते। विशेषतः जिन पेड़ों को हम पवित्र पेड़ों की श्रेणी में रखते हैं यथा पीपल, कदम्ब, बरगद, बेल, तुलसी एवं बाँस। ब्रायोफाइट श्रेणी के पादप मिट्टी की जलधारण क्षमता में प्रचुर वृद्धि करते हैं। मेहन्दी व करौन्दे की झाड़ियाँ झाड़ियों में रहने वाले पक्षियों के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

उचित संयोजन : वृक्षारोपण करते समय इन सभी बातों का ध्यान रखना चाहिए। पेसिफिक विश्वविद्यालय पर्यावरण संवेदनशीलता क्लब ऐसे सभी पर्यावरण के सहिष्णु बन्धुओं व संगठनों से आग्रह करता है कि वे जब भी वृक्षारोपण करें स्थानीय पारंपरिक, वानस्पतिक सम्मिश्रण को ध्यान में रखते हुए पौधों का चुनाव करेंगे तो हमारा पारिस्थितिकीय सन्तुलन बना रहेगा। इस संबंध में पौधों का चयन करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए –

- ऐसे पौधों का चयन करें जो वर्ष भर पक्षियों व कीट–पतंगों को आश्रय व आहार प्रदान करे। कई चिड़ियाएं चौड़े पत्ते वाले पेड़ों की पत्तियों को सिलकर अपने घौसलों को बनाती हैं। कई चिड़ियाएं बोगनविलिया जैसी कमजोर टहनियों वाली झाड़ियों पर घौंसले बनाती हैं जहाँ बिल्लियों को चढ़ने की संभावना कम रहती है। कई चिड़ियाएं घास एवं तृण में होने वाली कलिकाओं को खाती है। पक्षियों को आश्रय प्रदान कराने हेतु मेहंदी, अमरूद, सीताफल, अनार, बैर, इमली, रत्नजोत, करौंदा आदि लगाए जाने चाहिए।

- ऐसे पौधे व पेड़ जो भूमि की जलधारण क्षमता को बढ़ाते हैं। पलाश आदि कई पेड़–पौधों की जड़े भी जल धारण कर उसे वर्ष भर छोड़ती रहती हैं। कई ब्रायोफाइट्स भी जल संग्रह कर धीरे–धीरे छोड़ते रहते हैं।

- ऐसे पौधे व पेड़ जो विविध प्रदूषणकारी गैसों को सूक्ष्म मात्रा में सोखते हैं।

- ऐसे पौधे जो पर्यावरण–मित्र कीटों (Eco-friendly insects) को आश्रय आहार व पोषण प्रदान करें।

इस संबंध में स्थानीय परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए पारम्परिक पौधों का चयन करना चाहिए। पेसिफिक विश्वविद्यालय के प्रबन्ध अध्ययन संकाय के पर्यावरण सहिष्णुता क्लब द्वारा सामान्य जानकारी के लिए एक आधारभूत सूची जारी की जा रही है। जिसका उपयोग सभी कर सकते हैं –

कदम्ब (Authocephalus cadamba)
खजूर
बरगद (Ficus benghalensis)
पीपल (Ficus religiosa)
रोहिड़ा (Tecomella undulata)
मीठा टीमरू (Diospyros melanoxylon)
गूलर (Ficus glomerata)
खेजड़ी (Prosopis cineraria)
पलाश / खाखरा (Butea monosperma)

कैर / करीर (Capparis decidua)
अंजीर (Ficus carica)
इमली (Tamarindus Indica)
सीताफल (Annona squamosa)
सागवान (Sagon)
मौलसिरी (Mimusops elengi)
शहतूत (Morus Alba)
जंगल जलेबी (कीकर) (Pithecellobium dulce)
चन्दन (Santalum Album)

अर्जुन (Terminalla Arjuna)	खजूर (Palm tree)
अनार (Punica granatum)	महुआ (Madhuca longifolia)
बहेड़ा (Terminalia bellirica)	अमरूद (Psidum guajava)
देशी बबूल (Acacia nilotica)	आम (Mangifera Indica)
अमलतास (Cassia fistula)	आँवला (Phyllanthus)
चिलबिल (Holoptelea integrifolia)	गोन्दा बड़ा (लिसोड़ा) (Cordia dichotoma)
खैर (Acacia Catechu)	गोन्दा छोटा (Cordia Myxa)
बैर (Ziziphus mauritiana)	जामुन (Syzygium Cumini)
(झाड़ी बेर व बड़े बेर)	रायण (Manilkara Hexandra)
	सेमल (Bombax ceiba)

चन्दन एक मूल परजीवी (root parasite) वृक्ष है। प्रारम्भ में इसके बीज किसी अन्य पौधे की जड़ पर अंकुरित व पल्लवित होने के बाद स्वावलम्बी हो जाता है। इसलिये जहां यह पेड़ होता है, वहां चिड़ियाएं इसके फलों को खाकर बीज उत्सर्जित करती हैं। वहां नीचे मिट्टी में अन्य पेड़ों की जड़ें विद्यमान होती हैं तो एक–एक कर चन्दन के नये पादप उगते व बढ़ते रहते हैं। दस – पन्द्रह प्रजाति के पक्षी चन्दन के फल खाते हैं।

परिंडे–गर्मियों में पक्षियों के लिए अमृत : उपरोक्त वृक्षों के अतिरिक्त स्थानीय पारंपरिक पौधों, झाड़ियों, वृक्षों, लताओं व तृण अर्थात विभिन्न प्रकार की घास की प्रजातियों का भी पर्याप्त मात्रा में पौधारोपण करना चाहिए। इससे स्थानीय पक्षियों व पर्यावरण–मित्र कीटों को समुचित संरक्षण मिलता है। मिट्टी का कटाव एवं क्षरण रूकता है। उसके ऊपजाउपन में वृद्धि होती है और मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ती है। अकसर ये उपर्युक्त सूचित सभी पौधे मिल नहीं पाते हैं, इसलिए स्थानीय नर्सरी से अग्रिम व्यवस्था करके वृक्षारोपण से पूर्व इनकी व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त पक्षियों के पानी पीने के लिए उथले (shallow) गड्डे या छोटे मिट्टी के परिंडे आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। विशेषकर गर्मी में यह आवश्यक है। वनों में भी आजकल जल स्रोत सूखते जा रहे हैं। वहां भी छोटे अवरोधक एनीकट बांधने चाहिये।

इनके अतिरिक्त औषधीय महत्व के पेड़–पौधों और कीट–पतंगों के आवास, आहार, पराग आदि हेतु, पाक्षियों के लिये आवश्यक झाड़ियों की सुलभता आदि की दृष्टि से निम्न तृण (घास) क्षुप (झाड़ियाँ) लतायें जड़ी बूंटियाँ व वृक्ष आदि भी महत्वपूर्ण हैं। अपने स्थानीय जलवायु को दृष्टिगत रखकर आप अपने पौधों का चयन कर सकते हैं। इनमें कुछ जलीय पौधे व नदी तट आदि के पौधे भी हैं। ग्राउण्ड नेस्टिंग बर्ड्स के लिये 2–3 फीट की झाड़ियाँ भी उपयुक्त होती हैं। ऐसे मिश्रित पेड़–पौधों की एक छोटी सूची नीचे दी जा रही है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है, कि 1881 में जब उदयपुर में महाराणा सज्जन सिंह ने सज्जन निवास बाग बनाया, तब उसमें उत्यन्त सुविचारित अनुपात में 1100 प्रकार के पेड़–पौधे विकसित किये थे। आज भी यह 40 हैक्टेर में फैला बगीचा, सारी उपेक्षाओं के बाद भी व्यापक जैव विविधता समेटे हुये है। इसलिये आज हमारे द्वारा विविध स्थानों पर किये जाने वाले पौधारोपण में स्थान विशेष की पारम्परिक जैव विविधता को दृष्टिगत रखना चाहिये। उसमें उपरोक्त प्रजातियों के साथ–साथ निम्नांकित प्रजातियों में से अधिकतम को यथा सम्भव स्थान देना चाहिये। स्थानीय परिस्थितियों अनुरूप इस सूची का विस्तार व संशोधन भी आवश्यक है।

अतिबला
अर्क / आक (calotropis procera)
अगर
अगस्त
अजवायन
अमलतास
अनन्तमूल
अपामार्ग
अतिस
अडूसा / वासा
अशोक
अंकोल
असगन्ध
आवँला
इन्द्रायण
एरण्ड
कचनार
कट्फल
करंज
करौंदा
कण्टकारी
काकमाची
कासनी
कालिहारी
कालमेघ
काकड़ासिंगी
कीड़ामारी
कुटज
कुचला
केर
कैथ
खिरनी
गम्भारी
गुग्गुल
गुडूची / गिलोय
गुलतुर्रा
गोरखमुण्डी
घृतकुमारी
चक्रमर्द / पुवाड़
चम्पा
चमेली
चालमोगरा
चिर्मी
चित्रक
चिरायता
चोपचीनी / सदासुहागिन
चाँवलिया कन्द
छतिवन (संप्तपर्ण)
जलधनियाँ
जयन्ती
जामुन
जायफल
जमालगोटा
जवासा
ट्राइडेक्स
ढाक (पलाश)
तालमखाना
तालीस पत्र
तीसा (अलसी)
तिलपुष्पी
तुलसी
दुद्धी
घतूरा
धातकी / धाय
निर्गुण्डी
पाषाणभेद
पित्त पापड़ा
पीलू / गेस्वाक
पारिजात / हारश्रृंगार
द्रोणपुष्पी
बकायन
बादाम
ब्राह्मी
भाँगरा / भृंगराज
मकोय
मधुमति
मुस्तक / मोथा
मालावार नीम
मूर्वा
मोगरा
रक्त पुनर्ववा
रतनजोत
राजगिरा
रास्ना
रीठा
रेबन्दचीनी
लज्जालु या लाजवन्ती
वज्रदन्ती
शाहतरा
शंखपुष्पी
शतावरी
सरफोंका
सत्यनाशी / पीलाधतूरा
सर्पगन्धा
सहदेवी
सावा
सागवान
सहिजन
सेमल
नरगिस
नागफणी एवं विविध थूहर
वन तुलसी
वरूण
हरमल
हरड़
हिनरपदी
सभी प्रकार की घास

वस्तुतः आज तो वनों व गोचर भूमि की जैव विविधता तो नष्ट हुयी ही है। लेकिन अब वहाँ अनेक क्षेत्रों में घास–फूस भी नहीं है। इसलिये वनों में ही वन्य प्राणियों की खाद्य श्रृंखला समाप्त होती जा रही है। वहाँ भी विविध प्रकार की घास व पशुओं के चरने योग्य अन्य वनस्पतियों को लगाना परम आवश्यक है। गाय, भेड़, बकरियों, व अन्य प्राणियों यथा खरगोश, हिरण व नील गाय आदि के चरने योग्य वनस्पतियों को व्यापक स्तर पर विकसित करना होगा। वनों में इन जीवों के लिये चारा व आहार व जल की खोज में हाथी, भालू, शेर, चीते व नीलगाय आदि सभी आबादी वाले क्षेत्रों में आने को विवश हो रहे हैं। पर्वतीय क्षेत्रों से वनस्पति विनाश के बाद वहाँ तो, मिट्टी का कटाव हो जाने के बाद घास का उगना भी कठिन हो जाता है। एतएव वनों में भी उचित संयोजन (Proper combination) में घास, तृण, अन्य पादप, क्षुप, लतायें व वृक्ष विकसित करने की आवश्यकता उत्पन्न हो गयी है।

चतुर्थ अध्याय

बढ़ता तापमान और अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों की अपर्याप्तता

विश्व के बढ़ते तापमान पर आज सभी पर्यावरणविद व जागरुक समाज गम्भीर रूप से चिन्तित हैं। अठारहवीं सदी में औद्योगीकरण का दौर प्रारंभ होने के बाद वातावरण के तापमान में चिंताजनक वृद्धि हुई है। यह तापमान इसी प्रकार बढ़ता रहा तो पृथ्वी के उत्तरी व दक्षीणी ध्रुव पर बड़ी मात्रा में जमा बर्फ और विश्व के सभी हिमनद पिघल सकते हैं। पृथ्वी पर विद्यमान इस बर्फ में से बड़ी मात्रा में बर्फ के पिघल जाने पर सम्पूर्ण पृथ्वी पर जल–प्रलय की सी स्थिति बन सकती है एवं पृथ्वी का बड़ा भाग जलमग्न हो सकता है। गंगा जैसी वर्ष भर बहने वाली अनेक नदियां मौसमी नदियों में बदल सकती है। गंगा को वर्ष भर जल देने वाले 6000 हिमनद निरंतर बढ़ते तापमान के कारण आज आकार में छोटे–छोटे होते चले जा रहे हैं।

उत्तरी ध्रुव व दक्षिणी ध्रुव की बर्फ के पिघलते चले जाने से पेंगुइन, ध्रुवीय भालू आदि कई विविध जीव प्रजातियाँ विलोपित हो सकती हैं। तापमान में वृद्धि से सम्पूर्ण पृथ्वी पर तूफान, चक्रवात व अन्य प्रकार की अनगिनत प्राकृतिक आपदाएँ भी तेजी से बढ़ सकती हैं। ऊंचे तापमान से संपूर्ण दक्षिणी गोलार्द्ध में कृषि उत्पादकता घटकर खाद्य संकट का कारण बन सकती है, इसलिए 19वीं सदी से प्रारम्भ हुई इस तापमान वृद्धि को रोकना परम आवश्यक है। तापमान में यह वृद्धि वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड आदि विविध ग्रीन गैसों की बढ़ रही मात्रा के कारण हैं।

पर्यावरण संरक्षण अभिकरण (Environmental Protection Agency) के अनुसार विश्व के बढ़ते तापमान के कारण विगत 100 वर्ष में समुद्र का जल स्तर 6 से 8 इंच (15–20 सेन्टीमीटर) बढ़ गया है। तापमान इसी प्रकार बढ़ता रहा तो अगले 100 वर्ष में समुद्र का जल स्तर तीन फीट बढ़ जायेगा। पृथ्वी पर जमा विश्व की 90 प्रतिशत बर्फ दक्षीणी ध्रुव अंटार्कटिका अर्थात दक्षिणी ध्रव पर जमा है। वहां 2133 मीटर की मोटी बर्फ की परत है अर्थात यदि यह सारी बर्फ पिघल जाए तो समुद्र का जल स्तर 200 फीट बढ़ सकता है। व्यावहारिक दृष्टि से दक्षिणी ध्रुव की सारी की सारी बर्फ का जल पिघलना संभव नहीं है। वहां का तापमान –37 डिग्री है। लेकिन वातावरण परिवर्तन पर अन्तरशासकीय पैनल के अनुसार यदि तापमान वर्तमान गति से बढ़ता रहा तो वर्ष 2100 तक समुद्र का जल स्तर तीन फीट (90 सेमी) तक बढ़ सकता है।

इसके बड़े भयावह परिणाम हो सकते हैं। भारत के लोहचारी जैसे कई द्वीप, बढ़ते जल स्तर से पहले ही जलमग्न हो चुके हैं। बढ़ते जलस्तर से बांग्लादेश में भी 10 लाख लोग विस्थापित हो चुके हैं। तुवालु जैसे कई द्वीपीय देश हैं जिनका धरातल समुद्र से मात्र 15 फीट ऊंचा है। बढ़ते तापमान से हो रहा वातावरण परिवर्तन ऐसे देशों के लिए अत्यंत घातक सिद्ध होगा। वातावरण के बढ़ते तापमान की इस विडम्बना को देखते हुए ही वैज्ञानिकों ने एक मत से स्पष्ट चेतावनी दी है कि भूमण्डल का तापमान 19वीं सदी में औद्योगिकरण प्रारंभ होने के के पूर्व के तापमान से 2^0 से अधिक नहीं बढ़ना चाहिए। तापमान की वृद्धि को इस 2^0 सीमा में रखना आवश्यक है। हमारे सभी पुराणों में अति प्राचीन काल में हुये जल प्रलय के वर्णन विद्यमान हैं, जब मनु ने विविध प्रजातियों को एक बड़े जलयान में बचा कर रखा था। इस्लाम व इसाई मत के ग्रन्थों में भी नूह की नौका का वर्णन है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि प्रति 1^0 तापमान में वृद्धि के साथ वायुमण्डल में जल वाष्प की मात्रा 6 से 7 प्रतिशत बढ़ जाती है। जलवाष्प की यह बढ़ी हुई मात्रा अपनी गुप्त उष्मा से पुनः तापमान में वृद्धि करती है और वह बढ़ा हुआ तापमान वापस जलवाष्प में वृद्धि करता है और यह तापमान उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है। इसलिए कहीं ऐसा न हो कि बाहर से गर्मी पहुंचाए

बिना ही तापमान बढ़ता चला जाए और प्रलय की स्थिति बन जाए। अतएव औद्योगीकरण के पूर्व के तापमान से अब वातावरण के तापमान को 2^0 सीमा में रखना हम सब के भविष्य की रक्षार्थ के लिए परम आवश्यक है।

तापमान की 2^0 सीमा रेखा व पेरिस समझौता : वैज्ञानिकों द्वारा तापमान वृद्धि की जो सीमा रेखा तय की (Threshold limit) जा रही है, उसका अर्थ है कि विश्व के सभी देश मिलकर यह तय करें कि विश्व के सभी देशों द्वारा जो कार्बन डाई ऑक्साइड व अन्य गैसें वायुमण्डल में छोड़ी जा रही है, उनके उत्सर्जन की मात्रा इतनी परिमित करें कि विश्व का औसत तापमान औद्योगीकरण प्रारंभ होने के पूर्व के औसत तापमान से किसी भी हाल में 2^0 से अधिक नहीं बढ़े। वस्तुतः वायुमण्डल में छः प्रमुख गैसे हैं, जिनके द्वारा दिन में सूर्य ऊष्मा को ग्रहण कर पुनः छोड़ा जाता है, जिससे पृथ्वी के वायुमण्डल का तापमान बढ़ता है। इसलिये इन गैसों का उत्सर्जन परिमित किये बिना वातावरण के तापमान में वृद्धि को रोकना संभव नहीं है।

संपूर्ण भूमण्डल के विविध स्थानों का औसत तापमान 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में 13.7^0 था। अप्रैल 2016 तक इस तापमान में 1.10^0 की वृद्धि हो चुकी है। 2015 में हुए पेरिस समझौते में विविध देशों ने अब तक तापमान बढ़ाने वाली ग्रीन हाऊस गैसों में स्वेच्छापूर्ण कटौती के जो प्रस्ताव दिए हैं उनसे भूमण्डल के तापमान को इस 2^0 सीमा में रखना कतई संभव नहीं है। यदि सभी देश 2015 में पेरिस समझौते में दी गई वचनबद्धता का पालन करेंगे तब भी उस सीमा में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से 2030 तक तापमान 3.4^0 तक बढ़ जाएगा। इसके अत्यंत भयावह परिणाम होंगे। इसलिए सभी देशों से तापमान बढ़ाने वाली ग्रीन हाउस गैसों के नियंत्रण की नई वचनबद्धताएं आवश्यक है। लेकिन 2016 के नवम्बर में मोरक्को में हुए पक्षकारों के 22वें सम्मेलन में भी पेरिस समझौते की बारिकियों को अंतिम रूप दिया नहीं जा सका है। उसके लिए भी वर्ष 2018 की सीमा रेखा तय की है। विभिन्न पक्षकारों के ये सम्मेलन 1992 से हो रहे हैं। यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कन्वेशन ऑन क्लाइमेट चैंज का प्रथम सम्मेलन, 'पृथ्वी सम्मेलन' के नाम से रियो डी जेनेरियो में जून 1992 में हुआ था। यह अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण संधि 21 मार्च 1994 से प्रभाव में आई थी। इन पक्षकारों के अब तक 22 सम्मेलन हो चुके हैं। अब 23वां सम्मेलन जर्मनी के बोन नामक शहर में 6 से 17 नवम्बर 2017 के बीच आयोजित होगा।

ग्रीन हाउस गैसे ही पृथ्वी या किसी वातावरण या जलवायु में परिवर्तन की प्रमुख कारण हैं और अंततः भूमंडलीय ताप वृद्धि के लिए उत्तरदायी होती हैं। इनमें सबसे ज्यादा उष्मा शोषण व उत्सर्जन कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड, मीथेन, क्लोरो–फ्लोरो कार्बन वाष्प ओजोन आदि करती है। कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन पिछले 5 वर्षों में 40 गुना बढ़ गया है और औद्योगीकरण के बाद की अवधि में इसमें 100 गुने की बढ़ोतरी हुई है। इन गैसों का उत्सर्जन ताप विद्युतजनन, घरेलू उपकरणों वातानुकूलक, फ्रिज, कम्प्यूटर, स्कूटर कार आदि से होता है। कार्बन डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन का सबसे बड़ा स्रोत पेट्रोलियम ईंधन, कोयला आधारित ताप बिजली घर और परंपरागत चूल्हे भी हैं। पशुपालन से भी मिथेन का उत्सर्जन होता है। कोयला आधारित बिजली घर ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन के एक प्रमुख स्रोत हैं। भू–गार्भिक कोयला गैसीकरण से इसे कुछ कम किया जा सकता है। वैसे अब क्लोरोफ्लोरो कार्बन का प्रयोग भारत में बद हो चुका है, लेकिन इसके स्थान पर प्रयोग हो रही गैस हाइड्रो क्लोरो–फ्लोरो कार्बन भी बहुत हानिकारक ग्रीन हाउस गैस है। यह कार्बन डाई आक्साइड की तुलना में एक हजार गुना अधिक हानिकारक है। सौर ऊर्जा व पवन ऊर्जा इस दृष्टि से बेहतर विकल्प है। लेकिन फोटो वाल्टाइक पेनल उत्पादन में उपजने वाला प्रदूषण व 25 वर्ष बाद इसी सारे साज सामान का एक विसर्जन भी एक समस्या सिद्ध हो सकती हैं। इसलिये धारणक्षम उपभोग ही बेहतर विकल्प है। कार्बन डाई ऑक्साइड गैस बहुत तापमान बढ़ाती है। उदाहरण के लिए शुक्र ग्रह पर 17.5 प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड है इसलिये उसकी सतह का तापमान 467 डिग्री

सेल्सियस है। पृथ्वी पर हमारे लिए राहत की बात यह है कि धरती पर उत्सर्जित होने वाली 40 प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड को पेड़–पौधे प्रतिदिन, दिन में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में सोख लेते हैं और बदले में आक्सीजन उत्सर्जन करते हैं। वातावरण में ग्रीन हाऊस गैसें थर्मल इंफ्रारेड रेंज के विकिरण का अवशोषण कर पुनः उष्मा का उत्सर्जन करती है। सौर मण्डल में शुक्र, मंगल और टाइटन में ऐसी गैसें पाई जाती हैं जिनकी वजह से ग्रीन हाऊस प्रभाव होता है। लेकिन पृथ्वी पर भी 1750 के बाद औद्योगीकरण के दौर में इन गैसों की मात्रा तेजी से बढ़ी हैं। तालिका क्रमांक 1 में कुछ ग्रीन हाउस गैसों की वृद्धि को दर्शाया गया है। यदि इन गैसों का उत्सर्जन एसे ही बढ़ता रहा तो वर्ष 2030 तक तापमान 3.4 डिग्री तक बढ़ जाएगा।

तालिका 1 : औद्योगीकरण के युग में बढ़ता ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन

गैसें	**औद्योगीकरण पूर्व स्तर**	**वर्तमान स्तर**	**वर्ष 1750 के बाद वृद्धि**
कार्बन डाई ऑक्साइड	280 पीपीएम	387 पीपीएम	107 पीपीएम
मिथेन	700 पीपीबी	1,745 पीपीबी	1045 पीपीबी
नाइट्रस ऑक्साइड	270 पीपीबी	314 पीपीबी	44 पीपीबी
सी.एफ.सी – 12 (क्लोरो फ्लोरो कार्बन)	0	533 पीपीटी	533 पीपीटी

पीपीएम – पाट्‌र्स पर मिलियन (अनुपातिक मात्रा प्रति दस लाख में)
पीपीबी – पाट्‌र्स पर बिलियन (अनुपातिक मात्रा प्रति अरब)
पीपीटी – पाट्‌र्स पर ट्रिलियन (अनुपातिक मात्रा प्रति दस खरब)

इसलिये बढ़ती ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर नियंत्रण परम आवश्यक है। उपरोक्त तालिका के उत्सर्जन के आंकड़े अत्यंत चिंताकारक है। वैसे 12 वर्ष पूर्व क्योटो प्रोटोकॉल एवं उसके बाद 2015 के पेरिस समझौते में कई देशों ने इन गैसों के उत्सर्जन को परिमित करने की वचनबद्धतायें भी व्यक्त ही है।

पर्यावरण की रक्षार्थ 2015 का पेरिस समझौता 4 नवम्बर 2016 से प्रभाव में आ गया है। इस समझौते में कई देशों ने तापमान बढ़ाने वाली गैसों के उत्सर्जन को कम करने का वचन दिया था। भारत सहित लगभग 100 देशों द्वारा इस समझौते का अनुमोदन करने से जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण के प्रति विश्व अत्यंत आशावान हुआ था। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के सुझाव पर पिछले वर्ष पेरिस समझौते में धारणक्षम जीवन शैली (Sustainable life style) के मुद्‌दे को स्थान मिला था। लेकिन अभी तक इस पर आगे कोई विचार नहीं हो पाया है एवं कोई कार्य योजना भी नहीं बन पायी है। इसलिये अब 'धारणक्षम जीवन शैली' अपनाने पर भी समुचित बल दिया जाना चाहिये। पर्यावरण का संरक्षण पाश्चात्य उपभोग केन्द्रित व ऊर्जा भक्षी जीवन शैली के स्थान पर मितभोगी जीवन शैली अपनाने से ही संभव है। आज जहाँ भारत में प्रति व्यक्ति विद्युत उपयोग 1000 किलोवाट हावर वार्षिक से बहुत कम है, वहीं अमेरिका व यूरोप में विद्युत उपयोग 12–13 हजार किलो वाट हावर है। धारणक्षम जीवन शैली के मुद्‌दे के अतिरिक्त विकासशील देशों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के मुद्‌दे पर कोई प्रभावी सहमति नहीं बनाना अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। वस्तुतः पर्यावरण न्याय के सिद्धान्त पर चीन व अन्य औद्योगिक देशों ने जो ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन किया है, उन्हें उसकी भरपाई करनी चाहिये। भारत को चीन को दबाव में आये बिना, 'पर्यावरण न्याय के सिद्धान्त' पर अन्य सभी विकासशील देशों को साथ लेकर दबाव बनाना चाहिये। सभी विकासशील देशों की हरित प्रौद्योगिकी तक पहुंच बढ़ाने हेतु भी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है।

विकासशील राष्ट्रों की सशक्त आवाज से भारत ने जलवायु परिवर्तन 2016 के सम्मेलन में हिमालय के जलवायु परिवर्तन पर विश्व का ध्यान केन्द्रित करके इस मुद्दे पर एक अलग सत्र आहूत करवाया था। हिमालय का जलवायु, वैश्विक जलवायु परिवर्तन से भी द्रुत गति से बदल रहा है। यह अत्यंत चिंताजनक है। हिमालय से प्राप्त 10 नदियों का जल विश्व के 11 देशों की 120 करोड़ जनसंख्या के लिये जीवन का आधार है। विश्व का तापमान यदि इसी प्रकार बढ़ता रहा तो हिमालय के सभी हिमनद गल सकते हैं। तब गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र व सिन्धु जैसी नदियाँ मौसमी हो जाएंगी। तब बारह माह इन हिमनदों से प्राप्त होने वाला जल समाप्त हो जायेगा और इनमें पानी केवल वर्षा ऋतु में ही बह सकेगा।

जलवायु परिवर्तन पर होने वाले सम्मेलनों का मुख्य उद्देश्य विश्व के औसत तापमान को औद्योगिक युग के पहले के तापमान से 2 डिग्री की सीमा में रखने का है। विश्व के जलवायु विशेषज्ञों व सभी वैज्ञानिकों का एक मत से कहना है कि सम्पूर्ण विश्व को जबरदस्त तूफानों, सूखे और समुद्र के जल स्तर में बढ़ोत्तरी जैसे खतरे से और अनेक सामुद्रिक द्वीपों व समुद्र तटीय देशों को जलमग्न होने से बचाने के लिए तापमान पर नियंत्रण अनिवार्य है। जलवायु वैज्ञानिकों के अनुसार कार्बन युक्त ईंधन यथा–कोयला, पेट्रोल व डीजल का उपभोग व परिवहन में उनका उपयोग तथा खेती बाड़ी और रिहाइश के लिए जंगल काटने से जो ग्रीन हाउस गैसे बनती हैं व बढ़ती हैं, वे ही तापमान वृद्धि की कारण हैं। ये गैंसे जिनमें कार्बन डाई ऑक्साइड प्रमुख हैं, ये गैंसे सूर्य की गर्मी को सोंख लेती हैं, और वातावरण का तापमान भी बढ़ाती हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि ये गैसे ही जलवायु परिवर्तन की मुख्य कारण हैं। इसलिए यह जरूरी है कि पेरिस समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले सभी देश अपने यहां कार्बन डाई ऑक्साइड व अन्य गैसों के उत्सर्जन में महत्वपूर्ण कटौती करें।

इस समझौते को लागू करना व गैसों के उत्सर्जन में कटौती करना विश्व के लिये एक बहुत बड़ी चुनौती है। वस्तुतः कोयला, पेट्रोल, गैस जैसे फॉसिल फ्यूल के उपयोग में कटौती करने का सीधा असर देश के उत्पादन, औद्योगिक विकास, रोजगार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, उपभोग व अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। इसलिये अनेक देश इनमें कटौति से पीछे हट जाते हैं। लेकिन विशेषज्ञ यह भी मानते हैं कि पारंपरिक ईंधन के स्थान पर साफ व नए ईंधन के उपयोग की ओर बढ़ना दीर्घ काल में काफी सस्ता लाभप्रद और टिकाऊ होगा। अल्पकाल में इस पर अनुसंधान व ऐसी प्रौद्योगिकी के विकास में भारी लागत आयेगी। लेकिन सम्पूर्ण मानवता व जीव सृष्टि को बचाने के लिये यह अति आवश्यक है। अतएव, पेरिस जलवायु समझौते पर अब अंतर्राष्ट्रीय कानून बन जाने से जिन देशों ने इस पर हस्ताक्षर किए हैं, उन्हें कार्बन डाई ऑक्साइड में कटौती करने के अपने–अपने वायदे अनुरूप काम करना ही होगा। पेरिस समझौते पर 197 देशों ने दिसम्बर 2015 में हस्ताक्षर किये थे। इनमें से 100 देशों ने इसका अनुमोदन कर दिया है। इन 100 देशों ने इसे अपनी विधायिका से पारित भी करवा लिया है। इन सारी वचनबद्धताओं के बाद भी वातावरण का तापमान 2 डिग्री सेन्टीग्रेड की सीमा से बहुत आगे 3.6 से 4.8 डिग्री तक बढ़ जाने की सारी सम्भावनायें हैं।

लेकिन यह समझौता स्वयमेव ही कानूनी तौर पर बाध्यकारी नहीं है। इसका समुचित क्रियान्वयन इस मुद्दे पर हस्ताक्षर करने वाले देशों की इच्छा पर निर्भर है। विश्व जलवायु परिवर्तन सचिवालय ने 1990 के दशक से ही इस मुद्दे पर कई दौर की बातचीत आयोजित की है। उसके अधिकारी अब हर देश के कामकाज की समीक्षा भी करेंगे। लेकिन यह कैसे की जाएगी, अभी यह स्पष्ट व तय नहीं है। इन सारे प्रयासों के बाद भी पेरिस समझौते के अन्तर्गत "राष्ट्रीय निर्धारित योगदानों" से पूर्ण प्रतिबद्धता के बाद औद्योगीकरण के प्रारम्भ के तापमान से 1.5 डिग्री सेन्टीग्रेड के लक्ष्य की सीमा में तापमान को नियंत्रित करना असंभव है। इसके लिये सभी देशों को नयी वचनबद्धतायें देनी होंगी, जो आसान नहीं है।

नवम्बर 3, 2016 को संयुक्त राष्ट्र से जारी एक रिपोर्ट में स्पष्ट कहा गया है कि स्वेच्छा से कटौती करने के अब तक प्राप्त प्रस्तावों से भी वैश्विक तापमान को दो डिग्री सेल्सियस की सीमा में रखने में मदद नहीं मिलेगी। यह भी कहा गया है कि इन योजनाओं से साल 2030 में सुरक्षित स्तर से 25 प्रतिशत अधिक गैसों का उत्सर्जन होगा। इससे तापमान 3.4 डिग्री तक बढ़ जाएगा। इसीलिये संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट में सभी देशों से पुनः कहा गया है कि वे कार्बन उत्सर्जन में कटौती का लक्ष्य बढ़ाएं। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि औद्योगिक युग के पहले के तापमान से दो डिग्री की सीमा में तापमान का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये जितनी कम ग्रीन हाउस गैसें छोड़ी जानी चाहिए, उससे 2030 तक, 12 से 14 गीगाटन अधिक ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन होगा।

वस्तुतः विश्व को सारी घातक ग्रीन हाउस गैसों से मुक्त कराने के लिये खरबों डालर व्यय करने पड़ेंगे। इसके लिये 2009 के कोपेनहेगेन सम्मेलन में औद्योगिक देशों ने 100 अरब डालर वार्षिक जुटाने की बात भी की थी। इसके लिये कोष भी बना है। लेकिन उसमें धनी देशों ने नाम मात्र का योगदान दिया है। अब तक अधिकांश कार्बन उत्सर्जन औद्योगिक देशों व चीन ने ही किया है। भारत का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन आधे से एक टन प्रति वर्ष रहा है। औद्योगिक देशों का उत्सर्जन 12—17 टन प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष रहा है। आज सर्वाधिक ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन चीन करता है। अमेरिका के सकल कार्बन उत्सर्जन का ढाई गुना चीन करता है। इसलिये **''जलवायु न्याय''** के सिद्धांत पर इन सभी देशों को, उनके द्वारा फैलाये प्रदूषण की मौद्रिक क्षतिपूर्ति के रूप में स्वच्छ पर्यावरण कोष व अनुसंधान की लागत भी वहन करनी चाहिये। इस दृष्टि से भारत को चीन के दबाव में आये बिना, जलवायु सम्मेलनों में हरित कोष निर्माण व प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण के मुद्दों पर दृढ़ रूख दिखलाना होगा। भारत द्वारा ऐसा दृढ़ रूख अपनाने पर शेष विकासशील देश भी भारत के साथ अपनी एकजुटता दिखायेंगे।

ipe v/;k;

कृषि पद्धतियों में पर्यावरण सहिष्णुता

आधुनिक विज्ञान द्वारा कृषि, बागवानी व पशुपालन के क्षेत्र में विकसित नवीन तकनीकों से उत्पादकता में प्रचुर वृद्धि हुई है लेकिन कई नव्य तकनीकों व पद्धतियों से आज पर्यावरण, पारिस्थितिकी व जन–स्वास्थ्य के लिये कई गम्भीर संकट उत्पन्न हो रहे हैं। अतएव इन नव्य तकनीकों के व्यावहारिक उपयोग के पूर्व, जन–स्वास्थ्य व पारिस्थितिकी पर होने वाले उनके दुष्प्रभावों की समीक्षा भी आवश्यक हो जाती है। कृषि में जैविक आदायों के स्थान पर रसायनों के असन्तुलित व अनियंत्रित उपयोग से कई प्रदेशों में भूमि व्यापक स्तर पर बंजर हुयी है और प्रकृति में स्व–संचालित जैविक उर्वरता–सवंर्द्धन व कीट नियन्त्रण में सहयोगी कीट व सूक्ष्मजीवी कम होते चले गये हैं। देशी नस्ल के गौ वंश के विदेशी संकर नस्लों में रूपान्तरण के कारण, अब ये नयी संकर प्रजातियाँ, A_2 श्रेणी के स्वास्थ्य–वर्द्धक दूध के स्थान पर A_1 श्रेणी का ऐसा दूध दे रहीं हैं, जिससे मधुमेह, स्वलीनता का मनोविकार (ऑटिज्म), साइजोफ्रेनिया स्थायी अपचन व हृदय रोग सहित कई रोग महामारी के स्तर पर बढ़ रहे हैं। गौ वंश के साथ किये इन अनुप्रयोगों की तरह ऐसे ही प्रयोग, अब 'दैव रूपान्तरित' अर्थात जेनेटीकली मॉडिफाइड फसलों (जी.एम. फसलों) में किए जा रहे हैं। इन्हें भी विश्व के सभी वैज्ञानिक सुरक्षित नहीं मानते हैं। इसलिये इस सम्बन्ध में भी सुदीर्घ अनुसंधान आवश्यक हैं।

भारत एक कृषि महाशक्ति : विश्व की सर्वाधिक, 16 करोड़ हैक्टेर कृषि योग्य भूमि व सर्वाधिक 5.9 करोड़ हैक्टेर सिंचित क्षेत्रफल केवल भारत के पास है। प्रतिवर्ष जो 20 करोड़ हैक्टेर मीटर जल वर्षा ऋतु में बिना उपयोग के समुद्र में चला जाता है, उसके उपयोग से देश के समस्त कृषि योग्य 16 करोड़ हेक्टेर क्षेत्र में सिंचाई सम्भव है। ऐसे होने पर भारत विश्व की दो तिहाई जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति कर सकता है और विश्व कृषि महाशक्ति का स्थान ले सकता है।

रसायन प्रधानता से बंजर होती भूमि : स्वाधीनता के बाद विशेषकर 70 के दशक से, जैविक खाद व अन्य आदायों के स्थान पर रासायनिक खाद व संदिग्ध कीट नाशकों को प्रोत्साहन देते चले जाने व उसमें भी विविध पोषक तत्वों पर असन्तुलित अनुपात में अनुदान दिये जाने से नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश में भारी विषम–अनुपात जिसके अन्तर्गत अत्यधिक नाइट्रोजन (यूरिया) उपयोग के कारण बड़ी मात्रा में भूमि ऊसर व अन–उर्वरा होती चली गयी है। हाल ही में आये संसदीय समिति के एक प्रतिवेदन में कहा गया है कि पंजाब में एन.पी.के. के अनुपात की विषमता 39:9:1 पर पहुँच गयी है, इसका राष्ट्रीय औसत भी 7:3:1 पर चला गया है, जबकि आदर्श अनुपात 4:2:1 है। इसलिये प्रति किलो एन.पी.के. से जहाँ 1970 में 50 किलो अनाज की उपज मिलती थी व घट कर 10 किलो रह गयी है। पूरे देश में ही पोटाश, यशद (जिंक) व अन्य सूक्ष्म पोषकों एवं भूमि की उर्वरता बढ़ाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं के अभाव में भूमि की उर्वरता में भारी गमी आयी है और उसे बढ़ाने के लिये किसान द्वारा अधिकाधिक यूरिया के उपयोग से भूमि बंजर होती जा रही है।

दूसरी ओर नीदरलैण्ड्स (हॉलेण्ड) में जैविक खाद के उपयोग से वहाँ पर फसलों की उत्पादकता भारत की तुलना में 4–5 गुनी अधिक है। भारतीय कृषि में कीटनाशकों के अनियंत्रित उपयोग के कारण मृदा व बाहरी परिवेश में पाये जाने वाले फसलों के मित्र कीट व जीवाणुओं के विनष्ट हो जाने से मृदा की उर्वरता में वृद्धिकर्त्ता कैंचुए व ऐसे ही अन्य सभी विविध जीवाणु ही समाप्त होते चले गये हैं एवं जैविक कीट नियन्त्रण में सक्षम फसलों के मित्र जाने वाले कीट व सूक्ष्म जीवाणु भी पूरी तरह समाप्त हो गये हैं। उदाहरण के लिए नियो निकोटिनाइड श्रेणी के कीट नाशक मधुक्खियां में स्मृति–लोप से उन्हें नष्ट कर रहे हैं, जो अनेक फसलों में क्रास पालिनेशन से उनकी उत्पादकता बनाये रखती हैं। वहीं एण्डोक्राइन डिस्टर्बिंग कीटनाशी मनुष्यों की अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों को प्रभावित कर सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिये चुनौती सिद्ध हो रहे हैं। इन दोनों ही श्रेणी के कीटनाशकों को यूरोप में प्रतिबंधित कर दिया गया है। कीटनाशकों के अति उपयोग के कारण तो आज भूगर्भ का जल तक भी प्रदूषित होने लग गया है। कोकाकोला में पाये गए पेस्टीसाइड के अवशेष इसी का परिणाम है।

विदेशी संकर नस्ल के गौ वंश का दूध बढ़ते मधुमेह, हृदय रोग व मनोविकारों का कारण – इसी प्रकार देश के गौ वंश, को विदेशी प्रजातियों की नस्ल से कृत्रिम गर्भाधान द्वारा जर्सी, हॉल्स्टीन आदि संकर नस्लों में बदल देने से अब देश की ये अधिकांश संकर नस्लें A_1 श्रेणी का रोग–कारक दूध देने लग गयीं हैं। हमारी गायों की सभी पारम्परिक देशी नस्लें सहस्त्राब्दियों से A_2 श्रेणी का ही दूध देती रहीं हैं। वस्तुतः A_2 व A_1 श्रेणी दूध के प्रोटीन (केसीनो प्रोटीन) के 208 अमीनो एसिड्स में केवल एक अमीनो एसिड के अन्तर से वह टाइप 1 की डायबिटीज, हृदय रोग, स्थायी अपचन, मस्तिष्क विकार यथा स्वलीनता (ऑटिज्म) व साइजोफ्रेनिया (मनोच्छेद – एक मनोरोग) जैसी कई बीमारियाँ उत्पन्न करता है। दूसरी ओर गायों की भारतीय नस्लों द्वारा एक भिन्न अमीनों एसिड युक्त केसीनो–प्रोटीन वाला A_2 श्रेणी का दूध दिया जाता है। यह भारतीय नस्लों का A_2 श्रेणी दूध, मनुष्य को मधुमेह से बचाता है, हृदय की धमनियों में अवरोध नहीं होने देता है अर्थात हृदय रोग से बचाता है और बच्चों के मस्तिष्क के बेहतर विकास में सहायक होता है। भारतीय नस्ल का A_2 श्रेणी दुग्ध हृदय रोग से बचाव करने वाला होने से ही आयुर्वेदिक ग्रन्थ चरक संहिता में, हृदय रोग के उपचार में गौ घृत का उपयोग निर्देशित है। विदेशी नस्ल व उनकी संकर प्रजातियों का A_1 दूध तो बाल्यकाल में ही टाइप 1 की डाइबिटीज उत्पन्न करने के साथ ही हृदय की धमनियों में अवरोध पैदा करता है और बच्चों के मस्तिष्क में अनेक विकारों को जन्म देता है।

दुर्भाग्य से हमने तो भारत में अधिकांश शुद्ध देशी नस्लों को विदेशी हॉल्स्टीन आदि की संकर नस्लों में बदल कर अनेक महामारियों को आमन्त्रण दे दिया है। विश्व में अब केवल ब्राजील नामक देश आज A_2 श्रेणी दूध की शुद्ध भारतीय नस्लों को संजोये हुये है और भारतीय नस्लों व भारतीय नस्लों के गौ वंश के वीर्य का भी वह आज सबसे बड़ा निर्यातक है। आज जब अमेरिका व यूरोप सहित विश्व के सभी देशों में A_2 दूध के बढ़ते चलन से उसकी माँग बढ़ रही है, और A_2 श्रेणी दूध की उत्पादक व विपणनकर्त्ता कम्पनियाँ अपनी दूध की थैली पर A_2 श्रेणी दूध लिखती हैं। अपने गौ वंश की नस्ल रूपान्तरित कर देने से अब भारत विश्व में मधुमेह, हृदय रोग व मनोविकारों की राजधानी न बन जाये इसके लिये भारतीय गौ वंश की शुद्धता लौटाने हेतु हमें अब ब्राजील का सहारा लेना पड़ सकता है।

जी. एम. फसलों के प्रति सावधानी आवश्यक : जैव रूपान्तरित फसलों अर्थात जेनेटिकली माडिफाइड फसलों को लेकर भी अभी विश्व एकमत नहीं है। यूरोप सहित कई देशों ने इन फसलों को निरापद नहीं माना है। ऐसे में भारत जैसे कृषि प्रधान देश में इन जी.एम. फसलों की समुचित समीक्षा करना आवश्यक है। वस्तुत : किसी फसल में किसी भी अन्य जीव में विद्यमान कोई इच्छित गुण प्रकट करने के लिये, उस वांछित गुण से युक्त भिन्न पौधे या जन्तु के उस वांछित गुण के कारक 'वंशाणु' या 'जीन' (Gene) को प्रत्यारोपित करने पर, उस बाहरी वंशाणु से युक्त नयी फसल की प्रजाति को 'जैव –रूपान्तरित' या 'जी.एम.' अर्थात् जेनेटिकली मॉडीफाइड फसल कहते हैं। उदाहरण के लिये टमाटर को पाले से बचाने के लिये टमाटर की फसल में, बर्फीले समुद्र में पायी जानेवाली मछली में विद्यमान उसे बर्फ की ठंडक से बचाने वाली उस जीन (Gene) या वंशाणु को प्रत्यारोपित करके, पाला रोधी (फ्रोस्ट रेजिस्टेण्ट) टमाटर विकसित किया जा सकता है। इसी प्रकार कपास पर लगने वाले डोडा कीट (ball-worm) को मारने में सक्षम विष उत्पादक बैक्टीरिया 'बेसिलस थोरेंजियेंसिस' में उपलब्ध, इस विष के जनक वंशाणु या जीन को कपास में प्रत्यारोपित करके ऐसा बी.टी. कपास विकसित किया गया है, जिससे उस कपास में उस डोडा कीट (बॉल वर्म) को मारने की आंशिक सामर्थ्य आ जाती है। अब हाल में ऐसी कीटरोधी या खरपतवारनाशक रोधी विशेषताओं से युक्त सैकड़ों जैव रूपान्तरित फसल प्रजातियाँ मक्का, सरसों, कपास, बैंगन, सोयाबीन, अरण्डी, चावल, गेहूँ, आदि की तैयार की गयी हैं। इतनी बड़ी संख्या में जी.एम. फसल प्रजातियों का खुले में परीक्षण किये जाने पर इन फसलों के परीक्षण की अवधि में आस–पास के वानस्पतिक जगत के जैव द्रव्य के प्रदूषण की प्रबल सम्भावनायें बन जाती हैं। ऐसे परीक्षण ग्रीन हाउस में किये जाने चाहिये जिससे इनके पराग कण जैविक प्रदूषण नहीं फैला सकें।

यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि एवेण्टिस कम्पनी की 'स्टार लिंक' नामक जी. एम. मक्का खाने से जापान व कोरिया में एलर्जी की समस्या उत्पन्न हुयी थी। उसी मक्का को अमरीका में एक खाद्य उत्पादक 'क्राफ्ट बेल' नामक कम्पनी को बेच देने

पर क्राफ्ट बेल कम्पनी को उस जी.एम.मक्का से बने टेको–शेल नष्ट करने पड़े थे व उस एक ही मामले में एवेण्टिस कंपनी को छः करोड़ डालर (आज की विनिमय दर पर लगभग रु. 400 करोड़ तुल्य) की क्षतिपूर्ति का भुगतान वर्ष 2000 में करना पड़ा था। अब वहां जी.एम. मक्का को पशुओं को ही खिलाया जाता है।

अपने देश में प्रत्येक फसल की प्रजातियों में जो अथाह विविधता है और जिसके कारण प्रत्येक प्रजाति में प्रकृति में आनेवाली विभिन्न चुनौतियों के विरुद्ध प्रतिरोध की भिन्न–भिन्न प्रकार की विविधतापूर्ण सामर्थ्य है, उनके स्थान पर एक ही जी. एम. फसल लेने पर हमारी विविध वैशिष्ट्य वाली जैविक निधि भी विलोपित हो सकती हैं। देश की कृषि, कृषि उत्पादों की शुद्धता, जन–स्वास्थ्य व पर्यावरण संरक्षण के लिये निम्नांकित उपाय आवश्यक हैं।

1. **जैविक व प्राकृतिक कृषि : एकमेव श्रेयस्कर मार्ग :** अब हमें पुनः जैविक कृषि व प्राकृतिक कृषि की ओर बढ़ना चाहिये इस हेतु कृषि में घातक रसायनों को प्राथमिकता देने के स्थान पर जैविक आदायों को प्राथमिकता देनी चाहिए। इसके साथ ही समाज में रसायन प्रधान कृषि, विदेशी नस्ल के गौ वंश के A_1 श्रेणी के रोग–कारक दूध और जी. एम फसलों के दुष्प्रभावों की किसानों, पशुपालकों व उपभोक्ताओं को जानकारी कराना।
2. जैविक कृषि को अपनाने के साथ ही ऐसे जैविक कृषि उत्पादों के विपणन की (Marketing) प्रभावी व्यवस्था करना। देश में खुले में चल रहे सभी प्रकार के जी.एम. फसलों के परीक्षणों पर रोक लगा कर उन्हें बन्द ग्रीन हाउस में करना।
3. विदेशी संकर नस्लों के रोगकारी A_1 श्रेणी दूध के स्थान पर शुद्ध देशी नस्ल के स्वास्थ्यवर्द्धक A_2 श्रेणी के दुग्ध उत्पादों के विपणन के लिए सभी प्रयास करना।
4. सभी प्रकार के स्थानीय बीजों, जीव प्रजातियों और देशी गौ सहित सभी देशी नस्लों के पशुधन के संवर्द्धन एवं उनके उत्पादों के विपणन व प्रवर्तन के लिए प्रयास करना।
5. जी.एम. फसलों के परीक्षण केवल बंद ग्रीन हाउस में ही करने चाहिए। इन फसलों के परागकणों से दूसरी फसलों को प्रदूषण से बचाना चाहिए। जीएम फसलों को अनुमति देने के पूर्व उनके उत्पादों के उपभोग पर दीर्घकालिक पशु व मानवीय वॉलेन्टियर्स पर समुचित प्रयोग करने चाहिए। इसके पूर्व जी.एम. फसलों को अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।
6. देश भर के विभिन्न भागों में उपलब्ध सभी प्रकार की बीज प्रजातियों का समुचित संरक्षण करना चाहिए। उनके जैव द्रव्य पर विस्तृत अध्ययन किये जाने चाहिए।

NBk v/;k;

सब प्रकार के प्रदूषण पर नियन्त्रण की आवश्यकता

विविध मानवीय क्रियाकलापों और औद्योगिक व व्यावसायिक गतिविधियों के संचालन में ऐसे द्रव्यों का उत्सर्जन किया जाता है, जो विविध रूप से वायु, जल, मिट्टी व वनस्पति आदि प्राकृतिक पर्यावरण के विविध आयामों या घटकों को प्रदूषित करते हैं। इन प्रदूषणों का यहां संक्षिप्त विवेचन करना समीचीन होगा।

प्रदूषण की परिभाषा : मानवीय क्रियाओं के कारण पर्यावरण की विभिन्न परिस्थितियों में होने वाले ऐसे समस्त भौतिक व रासायनिक परिवर्तन जो पर्यावरण को वनस्पति और जीवधारियों के लिए कष्टप्रद अथवा अहितकर बना देते हैं और जिनके दुष्प्रभाव का प्राकृतिक शक्तियाँ निवारण न कर सकें तो एसी स्थिति को पर्यावरण का प्रदूषण कहा जाता है। मानवीय अथवा किन्हीं मानवेतर क्रियाओं, घटनाओं एवं दुर्घटनाओं से नैसर्गिक वातावरण में होने वाले ऐसे सभी परिवर्तनों को प्रदूषण कहा जाता है जिन्हें निष्प्रभावी करने में प्राकृतिक शक्तियाँ विफल रहती हैं और जो जीव जगत व वनस्पति जगत के लिए प्रत्यक्षतः अथवा परोक्ष में हानिकारक होते हैं।

प्रदूषण के रूप : पर्यावरण के विभिन्न घटक जो विविध मानवीय अन्तःक्रियाओं और व्यावसायिक गतिविधियों से दूषित होते हैं उनमें वायुमण्डल, जलस्रोत, भूमि व वनस्पति आदि प्रमुख हैं। व्यावसायिक गतिविधियाँ विशेषतः उत्पादन संबंधी क्रियाओं से पर्यावरण के विभिन्न घटकों का प्रदूषण होता है। इनका निम्न शीर्षक के अन्तर्गत विवेचन किया जा सकता है –

1. वायु प्रदूषण :

उत्पादन संबंधी विविध क्रियाओं एवं परिवहन साधनों के बढ़ते उपयोग से उत्पन्न विविध हानिकार गैसों की बढ़ती मात्रा के कारण वातावरण में इनका संकेन्द्रण निरंतर बढ़ रहा है। इन गैसों के प्राकृतिक विसरण की गति से इनकी वृद्धि की दर अपेक्षाकृत अत्यंत उच्च एवं बढ़ती हुई होने से वायुमण्डल स्वास्थ्य के लिए उत्तरोतर अधिकाधिक हानिप्रद होता जा रहा है। वायुमण्डल के इस प्रकार दूषित होने की स्थिति को ही 'वायु प्रदूषण' कहा जाता है। इसके कई प्रकार अथवा कारण हैं यथा –

(अ) विविध ईंधनों का दहन : विविध ईंधनों यथा पेट्रोल, डीजल, केरोसीन एवं अन्य हाइड्रोकार्बन, लकड़ी, कोयला आदि के दहन से कई गैसे व द्रव्य निकलते हैं जैसे सल्फर–डाई–आक्साइड कार्बन के कण आदि। वाहनों एवं कारखानों के अतिरिक्त दहन इंजनों के उचित रख–रखाव के अभाव में उनमें प्रयुक्त पेट्रोल, डीजल आदि का पूर्ण दहन न होने पर उनसे निकलने वाले धुएँ की मात्रा बहुत उच्च हो जाती है। उससे वातावरण भी अधिक प्रदूषित होता है। ताप विद्युत ग्रहों में कोयले के दहन से विविध गैसों के साथ–साथ भारी मात्रा में उड़ने वाली राख भी प्रदूषण करती है।

प्रभाव – वायुमण्डल के सल्फर डाई ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन–ऑक्साइड की अधिकता से तेजाब वर्षा की संभावना बढ़ जाती है, क्यों कि ये गैसे वर्षा की बूंदों के साथ मिलकर क्रमशः गन्धक का तेजाब व शोरे के तेजाब का निर्माण करती है।

वायुमण्डल में कार्बन–डाई–ऑक्साइड व कार्बन मोनो ऑक्साइड की अधिकता स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद सिद्ध हो सकती है। ये श्वसन तंत्र को प्रभावित करती है एवं ताप संतुलन को भी बिगाड़ती है। वायुमण्डल में बढ़ती कार्बन की

मात्रा भी श्वसन तंत्र को प्रभावित करती है तथा साथ ही दृष्टि स्पष्टता को भी कम करती है। लेड ऑक्साइड अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में भी मानवीय मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करती है। कार्बन डाई आक्साइड सहित सारी ग्रीन हाउस गैसें वातावरण के तापमान को भी तेजी से बढ़ा रहे हैं।

उपचार : 1. कारखानों वाहनों के इंजनों का समुचित रख–रखाव रखने से प्रदूषण की मात्रा नियंत्रित रखी जा सकती है। 2. बड़े व भारी इंजनों की उत्सर्जन नलिकाओं में अतिरिक्त बर्नर लगाये जाने चाहिए जिससे अर्द्ध जले ईंधनों का पूर्ण दहन हो। 3. पेट्रोलियम पदार्थों का समुचित परिशोधन कर इन्हें गन्धक, सीसा आदि अशुद्धियों से रहित करने के प्रयास किये जाने चाहिए।

(ब) कारखानों से गैसों का उत्सर्जन : कारखानों में विशेषतः रासायनिक कारखानों के उत्पादन कार्यों से कई हानिप्रद गैसे उत्पन्न होती हैं। इन गैसों को निर्बाध रूप से वायुमण्डल में छोड़ देने अथवा संयंत्रों के उचित रख–रखाव के अभाव में उनके रिसाव से वायुमण्डल उत्तरोतर विषाक्त होता जाता है। उदाहरणार्थ फास्फेरिक उर्वरकों के निर्माण के दौरान हाइड्रोजन फ्लोराइड गैस निकलती है। यह गैस स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक होती है, जिसको वायुमण्डल में नहीं छोड़ा जाना चाहिए। रेफ्रीजरेशन उद्योग द्वारा क्लोराफ्लोरो कार्बन का उपयोग किया जाता है जो अक्सर वायुमण्डल में रिसती रहती है। इसी प्रकार पेस्टीसाईड उद्योग एवं अन्य रसायन उद्योगों से क्लोरीन, अमोनिया एवं अनेक किटाणुरोधक घातक गैसें रिसती व निकलती रहती है।

प्रभाव – हेलोजन वर्ग की गैसों यथा क्लोरिन, फ्लोरिन, ब्रोमिन एवं विशेषतः क्लोरोफ्लोरो कार्बन जैसी गैसें स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होने के साथ–साथ ओजोन मण्डल के लिए भी घातक होती हैं। विश्व भर के वैज्ञानिक इस बात से चिन्तित है कि ओजोन मण्डल निरन्तर विरल होता जा रहा है एवं उत्तरी ध्रुव के निकट कई स्थानों पर ओजोन की परत पूर्णतः समाप्त हो जाने से ओजोन सुरक्षा आवरण में छिद्र होने का अनुमान लगाया जा रहा है। वायुमण्डल में ओजोन का आवरण सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणों को अवरूद्ध करने में सहायक है। ओजोन आवरण के नष्ट हो जाने पर ये पराबैंगनी किरणें सीधे पृथ्वी पर पहुँचने लग जायेंगी जिससे चर्म रोगों एवं चर्म कैंसर होने के अलावा धरती का तापमान इतना बढ़ जायेगा कि ध्रुव प्रदेशों में जमा बर्फ पिघलने लग जायेगा। ध्रुवीय बर्फ के पिघल जाने पर पृथ्वी का अधिकांश भाग जलमग्न होकर पौराणिक प्रलय को साकार कर देगा।

उपचार – विषाक्त गैसों के वायुमण्डल में संकेन्द्रण को रोकने के लिए दो प्रकार के उपचार किये जाने चाहिए –

1. विविध उत्पादन कार्यों में उप उत्पादन एवं अवशिष्ट उत्पादों के रूप में उत्पन्न गैसों, जल, अथवा अन्य विलयों से विलेयित कर देना चाहिए अथवा किसी अन्य द्रव्य में मिश्रित करके अन्य किसी यौगिक का निर्माण करना चाहिए।
2. संयंत्र के उचित रख–रखाव द्वारा उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली गैसों का रिसाव रोका जाना चाहिए।
3. प्रत्येक उद्योग में इस हेतु एक विभाग होना चाहिए जो विशेषज्ञों की देखरेख में पूर्ण सतर्कता के साथ अपना कार्य निष्पादन करता रहे।

(स) कूड़ा–करकट व अवशिष्टों से प्रदूषण : नगरों में जनसंख्या के अत्यधिक जमाव के कारण एवं बढ़ती उपभोग वृत्ति से भारी मात्रा में कूड़े–करकट में वृद्धि हो रही है। इसके उचित विसर्जन के अभाव में स्थान–स्थान पर कूड़े के ढेर सड़ते रहिते हैं जिनमें से अनेक गैसे निकलकर वायुमण्डल को प्रदूषित करती है और विभिन्न प्रकार के रोगाणु उत्पन्न होते रहते हैं। आजकल पैकिंग हेतु जो प्लास्टिक की थैलियां प्रयुक्त होती हैं उन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता है। अतः इनका भारी मात्रा में जमा हो जाना भी एक समस्या बन गया है।

प्रभाव – ये विभिन्न गैसें एवं रोगाणु कई रोगों को उत्पन्न करते हैं और कई बार महामारियों का कारण बन जाते हैं।

उपचार –

1. शीघ्र सड़ने योग्य कूड़े–करकट को बन्द गड्ढ़ों में जमीन में गाड़कर बहुमूल्य प्राकृतिक खाद में परिवर्तित किया जाना चाहिए।
2. दहन योग्य कूड़े–करकट को बन्द बरनरों में जलाकर उनसे विद्युत ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है, जैसा कि कई पाश्चात् देशों में किया जा रहा है।
3. धात्विक प्लास्टिक संतुलन बनाये रखने में सहयोग देते हैं। विभिन्न पौधों द्वारा कार्बन–डाई–ऑक्साइड ही नहीं अन्य कई हानिकारक गैसों का भी न्यूनाधिक मात्रा में अवशोषण किया जाता है, जिससे वायुमण्डल परिशुद्ध होता है। इसलिए अधिकाधिक वृक्षारोपण भी प्रदूषण निवारण का एक अच्छा उपचार है।

2. जल प्रदूषण

उत्पादन संबंन्धी एवं अन्य मानवीय क्रियाओं के फलस्वरूप जल स्रोतों में विभिन्न हानिकारक द्रव्यों की मिलावट भी जनजीवन के लिए अत्यंत हानिकारक है। इस प्रकार होने वाले जल प्रदूषण के प्रमुख कारण अग्रलिखित है –

अ. **औद्योगिक अवशिष्टों का नदियों व तालाबों में विसर्जन** – विभिन्न कारखानों द्वारा अपने अवशिष्ट पदार्थों का विसर्जन आस–पास के जल स्रोतों यथा नदियों, तालाबों या समुद्रों में कर दिया जाता है। ये अपशिष्ट पदार्थ इन जल स्रोतों को गन्दा कर देते हैं। इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं –

I चमड़ा प्रविधियन उद्योग द्वारा इस कार्य में नदियों का जल प्रयुक्त करके दूषित जल को बिना शुद्ध किये वापस नदियों में छोड़ दिया जाता है।

ii. वस्त्र रंगाई एवं प्रविधियन उद्योग भी जल पर आधारित है। ये अपनी रंग एवं रसायन युक्त दूषित जल को जल स्रोतों में डाल देते हैं। राजस्थान के पाली व आसपास के मरू प्रदेशों में सूती वस्त्र रंगाई उद्योग बहुत विकसित है। रंगाई के बाद बचने वाले घोल को बालू में विसर्जित कर देने की प्रवृत्ति के कारण उन क्षेत्रों में कुएं का पानी तक प्रदूषित होना प्रारम्भ हो गया है।

iii. रासायनिक खाद एवं रासायनिक उद्योगों द्वारा भी कई प्रकार के विषाक्त द्रव्यों का जल में विसर्जन कर दिया जाता है।

प्रभाव –

i. विभिन्न अवशिष्टों के जल में विसर्जन से वह जल मानवीय उपयोग ही नहीं पशु–पक्षियों व सिंचाई के लिए भी हानिकारक व अनुपयोगी हो जाता है।

ii. दूषित जल में रोगाणुओं की वृद्धि होती है जिनसे की रोग उत्पन्न होते हैं। दूषित जल आसपास की भूमि को उसर बना देते हैं।

iii. प्रदूषित जल में जलीय जीव–जन्तु नष्ट हो जाते हैं।

ब. **गन्दी नालियों का जल स्रोतों में विसर्जन** – शहरों की गन्दी नालियों को अक्सर नदियों व नालों में छोड़ दिया जाता है जिससे उनका जल प्रदूषित हो जाता है।

प्रभाव – इस प्रकार प्रदूषित जल विभिन्न प्रकार के रोगाणुओं को उत्पन्न करता है एवं अनुपयोगी हो जाता है।

स. **गर्म जल का विसर्जन** – ढलाई उद्योग द्वारा ढले हुए धातु उपकरणों को शीतल करने हेतु जल का उपयोग किया जाता है और उस जल को जो बहुत गर्म हो जाता है आसपास के जल स्रोतों में छोड़ दिया जाता है। ऐसा करने से जलीय वनस्पति एवं जल जन्तु नष्ट हो जाते हैं।

द. **कीटनाशको से जल प्रदूषण** – फसलों पर कीटनाशकों के अविवेकपूर्ण उच्च मात्रा में छिड़काव से ये सभी कीटनाशक मिट्‌टी में मिल जाते हैं और वर्षाऋतु में भारी मात्रा में मिलकर ये जल स्रोतों में पहुंच जाते हैं।

जल का विवेकहीन दोहन – अत्यधिक मात्रा में जल के दोहन से भूगर्भ के जल का स्तर तेजी से गिर रहा है। गिरते स्तर के कारण नलकूपों से जल के दोहन पर भूगर्भ में दूर से खिंच कर पानी नल कूप तक आता है। इससे चट्‌टानों की खोहों में से आने वाला पानी चट्‌टानों को धोकर अपने साथ आर्सेनिक व फ्लोराइड युक्त चट्‌टानों से ये विषैले तत्व भी साथ लाता है। इस भूगर्भिक जल में इन तत्वों की मात्रा आजकल बढ़ रही है।

जल प्रदूषण के उपचार –

I दूषित जल को परिशोधन यन्त्रों से परिशुद्ध करके ही जल स्रोतों में छोड़ा जाना चाहिए। वर्षा जल से भी भूगर्भिक जल को रीचार्ज करना चाहिए।

ii. कीटनाशकों का उपयोग विवेकपूर्ण तरीकों से किया जाना चाहिए।

iii. जल की जिन घुलनशील अशुद्धियों को परिशोधन संयंत्रों से शुद्ध करना संभव नहीं हो तब उस जल को चौड़े वाष्पीकरण टेंकों में खुला छोड़कर वाष्पीकृत किया जाना चाहिए। ऐसा करने से शुद्ध जल वाष्पीकृत हो जायेगा एवं उसमें घुली हुई अशुद्धियां मात्र ही शेष बच जायेंगी।

3. मृदा या भूमि प्रदूषण –

विविध मानवीय क्रियाओं से धरातलीय मिट्‌टी के अनुपयोगी, हानिप्रद एवं उर्वराशक्ति रहित होने की प्रक्रिया को मृदा प्रदूषण कहते हैं। मृदा प्रदूषण के अनेक कारण व कई रूप हैं। उनमें से निम्न प्रमुख हैं –

अ. **मिट्‌टी का कटाव** – वनों की अविवेकपूर्ण कटाई के फलस्वरूप मिट्‌टी के कटाव की समस्या बढ़ जाती है। पेड़–पौधे जहां हर रोज पानी के बहाव की गति को धीमा करके कटाव को रोकते हैं वहीं इसकी जड़ें मिट्‌टी को जकड़े रहती है लेकिन प्राकृतिक वनस्पति के अभाव में वर्षा ऋतु में पानी के बहाव के कारण एवं गर्मी में तीव्र हवाओं के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर विस्थापित हो जाती है। पानी के बहाव से विस्थापित मिट्‌टी अक्सर नदियों क`बहाव मार्ग के निचले हिस्सों में जमा हसे जाती है, जिससे नदियां मैदानी भाग में आकर उथली हो जाती हैं और उनका पानी आसपास के क्षेत्रों में फैल जाता है और तटीय क्षेत्रों से भूमि की ऊपरी उपजाऊ परत को अपने साथ बहा ले जाता है।

(ब) **भूमि का ऊसर हो जाना (Salinity of Soil)** – कटाव से उत्पन्न बाढ़ों के कारण, जो पानी नदियों के आसपास के क्षेत्रों में फैल जाता है उसके लम्बे समय तक एक ही स्थान पर इकट्‌ठा रहने से भूमि की निम्नवर्ती परतों के लवण धुल कर सतह पर आ जाते हैं, जिससे मिट्‌टी लवणीय हो जाती है।

विविध उद्योागें द्वारा उनके तरह अवशिष्टों को नदी–नालों में अथवा अन्यत्र विसर्जित करने से भी मिट्‌टी लवणीय अथवा क्षारीय हो जाती है।

(स) **कीटनाशकों एवं खरपतवार नाशकों से प्रदूषण (Pollution from Pesticides and Weedicides)**

– फसलों के बचाव हेतु प्रयुक्त कीटनाशकों व खरपतवार नाशकों का अविवेकपूर्ण ढंग से वांछित से अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर इनकी काफी मात्रा मिट्टी में जमा होती रहती है जो परवर्ती फसलों द्वारा उनकी जड़ों के माध्यम से अवशोषित होती रहती हैं जिससे ये फसलें उपयोग के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। हैदराबाद स्थित पादप संरक्षण संस्थान द्वारा फलों व सब्जियों के उपयोग से मानवीय स्वास्थ्य को एक गंभीर भावी खतरा है। इसी कारण अनेक कीटनाशकों पर विश्व में प्रतिबन्ध लगाये जा रहे हैं। भारत में बी.एच.सी. पर मार्च, 1997 से रोक लगायी गयी थी। कई देशों में मिथाइल पेराथियान भी प्रतिबन्धित है। कई अन्य उत्पादों पर भी प्रतिबन्ध लगाने का प्रबल सम्भावना है। विकसित राष्ट्रों में तो इन दिनों नीम, करज्ज आदि पर आधारित जैव कीटनाशकों को प्रचलन बढ़ रहा है।

(द) घटिया उर्वरकों का उपयोग (Use of poor quality fertilizer) – खनिज आदानों से निर्मित घटिया उर्वरक जिनमें वांछित तत्व प्रमाणित मात्रा से न्यून मात्रा में होते हैं, वे भूमि को खराब कर देते हैं। नाइट्रोजन, फास्फॉरस व पोटाश का निश्चित 'अनुमान से विषय मात्रा में से भी भूमि बजर हो रही है।

मृदा या भूमि प्रदूषण के उपचार –

(i) किसी क्षेत्र विशेष से विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रों में पेड़ पौधे एक साथ काटने या नष्ट नहीं करने चाहिए। पेड़ों को काटने के साथ–साथ नये पेड़ भी लगाते रहने चाहिए।

(ii) **जैविक कृषि** – जैविक पद्धति से कृषि से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और उसका रासायनिक प्रदूषण से बचाव होता है।

(ii) मैदानी क्षेत्रों में जल के बहाव या निकासी की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे बाढ़ का पानी एक स्थान पर एकत्र न होकर आगे बढ़ता रहे, ऐसा होने से भूमि के ऊसर होने की संभावना नहीं रहती है।

(iii) कीट एवं खरपतवार नाशकों का अत्यन्त अल्प मात्रा में आवश्यकतानुसार ही प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे उनका यथा शीघ्र विघटन हो सके।

(iv) अच्छे व प्रामाणिक उर्वरकों का निर्धारित सीमा में उपयोग किया जाना चाहिए। सरकार को भी उर्वरकों की किस्म का समुचित नियमन करना चाहिए, जिससे घटिया उर्वरकों से मिट्टी पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

4. ताप प्रदूषण (Thermal Pollution) –

विविध औद्योगिक क्रियाओं एवं सभ्यता के विस्तार के साथ–साथ वातावरण का तापमान विगत कुछ दशकों से बढ़ता से बढ़ना प्रारम्भ हो गया है। तापमान में यह वृद्धि जन स्वास्थ्य के लिए ही नहीं वरन् धरती के वातावरण के लिए एक गम्भीर खतरा है। विश्व भर के वैज्ञानिक वातावरण में तापमान वृद्धि को लेकर अत्यन्त चिंतित है।

तापमान वृद्धि के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं –

(अ) कार्बन डाई ऑक्साइड सहित ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि (Increase in Carbon Monoxide) – विभिन्न प्रकार के इंधनों के दहन से उत्पन्न कार्बन डाई आक्साइड व कार्बन मोनो ऑक्साइड आदि की मात्रा वायुमण्डल में निरन्तर बढ़ रही है जो तापमान वृद्धि का एक प्रमुख कारण है।

(ब) प्राकृतिक वनस्पति का विनाश (Destruction of Natural Vegetation) – पेड़–पौधों से होने वाले जल के वाष्पीकरण की प्रक्रिया में वाष्पीकरण हेतु जो गुप्त ऊष्मा प्रयुक्त होती है, उसका वातावरण पर शीतलीकरण प्रभाव होता है। इससे वातावरण में आर्द्रता का भी यथेष्ट स्तर बना रहता है। लेकिन इस

शताब्दी के दौरान वनों का जिस प्रकार से विनाश हुआ है उसके कारण भी तापमान में वृद्धि हुई है।

(स) बहुमंजिली इमारतें (Multi Storey Buildings) – देश के प्रमुख नगरों में बहुमंजिले भवनों के निर्माण से वायु का स्वच्छ विचरण अवरूद्ध हो जाता है। बड़ी–बड़ी इमारतों के बीच संकड़ी गलियों में वायु प्रवाह पूर्णतः अवरूद्ध व स्थगित हो जाता है, जिससे दिन भर की गर्मी के बाद रात्रि में भी इन इलाकों का वायु प्रवाह से होन वाला शीतलीकरण नहीं हो पाता है।

ताप प्रदूषण के परिणाम –

(i) तापमान वृद्धि से विभिन्न कीटाणुओं की वृद्धि के लिए अनुकूल तापमान सुलभ हो जाता है, जिससे विविध संक्रामक रोगों में वृद्धि हो जाती है।

(ii) बढ़े हुए तापमान पर मानव शरीर की चयापचयी क्रियाएँ भी प्रभावी होती है। उच्च रक्तचाप, मानसिक उद्‌दविग्नता एवं अल्पपित आदि में भी तापमान के साथ वृद्धि होती है।

(iii) तापमान में वृद्धि निरन्तर जारी रहने की दशा में ध्रुवीय क्षेत्रों की बर्फ में पिघलने की समस्या उत्पन्न हो सकती है, जिससे समुद्र जल में काफी वृद्धि हो सकती है। यदि ऐसा होता है तो कई तटीय नगर जलमग्न हो सकते हैं।

तापमान प्रदूषण का उपचार –

1. यथा संभव अधिकाधिक वृक्षारोपण किया जाना चाहिए। नगर के चारों और सघन हरित क्षेत्र विकसित किये जाने चाहिए।
2. वायु प्रदूषण पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित किया जाना चाहिए जो गैसे वायुमण्डल का तापमान बढ़ाती हैं उनका उत्सर्जन रोकना चाहिए।
3. नगर नियोजन करते समय सड़कों को अपेक्षाकृत चौड़ा रखा जाए एवं भवनों के बीच पर्याप्त खुला स्थान रखा जाना चाहिए जिसे वायु का प्रवाह अवरूद्ध न हो।

5. ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution) –

अत्याधिक कोलाहल व्यक्ति की शारीरिक व बौद्धिक क्षमता को प्रभावित करता है एवं कई प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न करता है। विगत कुछ दशकों से विशेषतः शहरी क्षेत्रों में शोरगुल में निरंतर वृद्धि हो रही है जिससे व्यक्त्वि को निरंतर मानसिक शांति का अभाव महसूस होता है, एकाग्रता भंग होती है, व्यग्रता व चिड़चिड़ापन बढ़ता है। वैचारिक क्रमबद्धता अव्यवस्थित होती है, सुनने की क्षमता घटती है एवं रक्तचाप गड़बड़ाता है। इस बढ़ते हुए शोरगुल या ध्वनि प्रदूषण के अनेक कारण हैं जिसमें कुछ प्रमुख अग्रलिखित हैं –

(अ) स्वचालित वाहन (Automobile Vehicles) – वाहनों की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ उके रख–रखाव के अभाव में वाहनों का शोर निरंतर बढ़ता जा रहा है। विकसित देशों में वाहनों के शोर की निश्चित सीमा निर्धारित कर दी गई हैं, जिससे अधिक शोर करने वाले वाहनों को जब्त करके उनके मालिकों पर भारी अर्थदण्ड लगाया जाता है, लेकिन भारत में ऐसे प्रावधानों का अभाव है।

(ब) प्राकृतिक वनस्पति का विनाश (Destruction of Natural Vegetation) – पेड़–पौधे भी बहुत बड़ी मात्रा में ध्वनि कम्पनों को रोक लेते हैं लेकिन विगत कुछ वर्षों में पेड़–पौधों के विवेकहीन विनाश के कारण वातावरण में शोरगुल की मात्रा बढ़ती जा रही है।

(स) **उद्योगों का शोरगुल (Noise from Industries)** – कारखानों में विभिन्न मशीनों व संयंत्रों से होने वाले उच्च शोरगुल से भी ध्वनि प्रदूषण निरन्तर बढ़ रहा है।

(द) **ध्वनि प्रसारण यंत्रों का उपयोग (Use of Loud Speakers)** – ध्वनि प्रसारण यंत्रों के बढ़ते उपयोग से भी शोरगुल में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त रेडियो, डी.वी.डी., टीवी, वी.सी.आर. एवं इसी प्रकार के अन्य उपकरणों से भी वातावरण प्रदूषित होता जा रहा है।

ध्वनि प्रदूषण के उपचार –

(i) अधिक शोरगुल पैदा करने वाले वाहन मालिकों को दण्डित किया जाना चाहिए।

(ii) सघन वृक्षावली विकसित की जानी चाहिए।

(iii) विभिन्न यंत्रों व संयंत्रों व वाहनों के लिए अच्छी किस्म के साइलेन्सर्स (ध्वनि रहित) विकसित किये जाने चाहिए।

(iv) ध्वनि यंत्रों विस्तारक (Loud speakers) का नियमन किया जाना चाहिए एवं उनका विवेकपूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।

6. विकिरण धर्मी प्रदूषण (Radio active Pollution)

अनेक कारणों से वातावरण में कई हानिप्रद विकिरणों की मात्रा बढ़ रही है जो पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं एवं मनुष्यों सभी के लिए अत्यन्त घातक है। इन विकिरणों का प्रसार आनुवांशिकी तक को प्रभावित कर देता है। इसके अतिरिक्त इनका वातावरण में प्रभाव भी अति दीर्घकाल तक बना रहात है। इन विकिरणों के कारण, प्रभाव व उपचार निम्नलिखित हैं –

(अ) **आणविक विद्युत गृह (Atomic Power Plants)** – आणविक विद्युत गृहों से न्यूनाधिक मात्रा में कई हानिप्रद विकिरण वातावरण में फैलते रहते हैं एवं यदा कदा कोई छोटी–बड़ी दुर्घटना को जाने पर आसपास के लोगों के लिए गंभीर संकट उत्पन्न हो जाता है यथा पूर्व सोवियत संघ के चैरेनाबिल स्थित संयंत्र में दुर्घटना।

(ब) **परमाणविक विस्फोट (Atomic Explosion)** – विविध विकसित देशों द्वारा वायुमण्डल, समुद्र में एवं भूगर्भ में अनेकानेक अत्यन्त शक्तिशाली परमाणु विस्फोट किये गये हैं। वायुमण्डलीय एवं सामुद्रिक विस्फोटों से जनित विकिरणों का निश्चित रूप से वातारवण पर दुष्प्रभाव हुआ है।

(स) **एक्स–रे एवं अन्य विकिरण आधारित वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग (Use of X-fay and other Radio diagnostic techniqus)** – एक्स–रे, कैट स्केन आदि क्रियाएँ संबंधित रोगी को तो प्रभावित करती ही हैं तथा उन कार्यों में संलग्न कर्मचारियों एवं मशीनों के निकटवर्ती क्षेत्रों में भी इन विकिरणों का दुष्प्रभाव होता है।

(द) **अनाज, फल व सब्जी संरक्षण (Preservation of food grains, fruits and Vegatables)** – विकिरणों द्वारा खाद्यानों, फलों व सब्जियों के संरक्षण की परम्परा निरन्तर बढ़ रही है, लेकिन इस प्रक्रिया में इन खाद्य प्रदार्थों का वांछित से अधिक विकिरणों के प्रतिधेयित कर लेने पर ये अत्यन्त हानिप्रद सिद्ध हो रहे हैं।

प्रभाव –

(i) विकिरणों से कई घातक रोग विशेषकर कैन्सर की संभावना बढ़ जाती है।

(ii) विकिरणों से जीवधारियों की अनुवांशिकी गंभीर रूप से प्रभावित होती है।

(iii) विकिरणों में वृद्धि से विकलांग शिशुओं की संख्या बढ़ रही है।

(iv) विकिरणों से व्यक्ति में मानसिक उद्विग्नता बढ़ जाती है।

विकिरण धर्मी प्रदूषण अगोचर होने से इसका सहजता से पता लगाना भी कठिन होता है और जिससे व्यक्ति अपना बचाव करने की नहीं सोचता है।

उपचार –

(i) सभी प्रकार के आणविक विस्फोट बंद कर दिये जाने चाहिए।

(ii) विद्यमान आणविक विद्युत गृहों में पूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। नये संयंत्रों की स्थापना रोकनी चाहिये।

(iii) एक्स–रे व कैट स्केन का उपयोग यथा संभव न्यूनतम एवं पूर्ण सुरक्षा के साथ किया जाना चाहिए।

(iv) खाद्य पदार्थों के संरक्षण में विकिरण का उपयोग यथा संभव नहीं किया जाना चाहिए।

(v) आलोच्य स्थानों पर विकिरणों के मापन हेतु विकीरण मापी संयंत्र लगाये जाने चाहिए।

(vi) अनेक प्रयोगों में सिद्ध हुआ है कि हवन से भी विकिरण नियंत्रित होते हैं।

Ikrok v/;k;

जल संरक्षण एवं वर्षाजल का संचय

भारत की जनसंख्या विश्व की 16 प्रतिशत है। लेकिन हमारे पास विश्व के शुद्ध जल स्रोतों के मात्र 4 प्रतिशत स्रोत ही सुलभ है। स्वतंत्रता के समय भारत में जल की वार्षिक प्रति व्यक्ति उपलब्धता 5000 घनमीटर थी, जो वर्ष 2000 में घट कर 2000 घनमीटर प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति रह गई है तथा वर्ष 2025 तक मात्र 1500 घनमीटर प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति हो जाने की संभावना है। आज एक ओर जल की प्रतिव्यक्ति मात्रा घटकर जल संकट की संभावना बता रही है वहीं दूसरी ओर नहरी सिंचित क्षेत्रों में अवैज्ञानिक सिंचाई व अनियंत्रित जल उपयोग के कारण जल प्लावन, लवणीयता एवं क्षारीयता आदि फैलाकर उपजाऊ भूमि का ऊसर बनती जा रही है। भू जल के अति दोहन से भूगर्भ के जल में आर्सेनिक व फ्लोराइड की अत्यधिक मात्रा बढ़ रही है।

जल विशेषज्ञों के अनुसार कि सन 2050 तक भारत के 150–200 जिलों व 8–10 राज्यों को गंभीर जल संकट का सामना करना पड़ सकता है। आगामी 50 वर्ष में भारत ही नहीं विश्व के कई देशों में जल के अभाव से कृषि, उद्योग व अन्य गतिविधियाँ गम्भीर रूप से प्रभावित होंगी। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) के अनुसार 2050 तक पूरे विश्व की लगभग एक तिहाई (2.5 अरब) जनसंख्या को भारी जल संकट का सामना करना पड़ सकता है। आज भी 40 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाले लगभग 70–75 देशों में न्यूनाधिक जल संकट विद्यमान है। भारत सहित कुछ देशों में जल उपलब्धता किस प्रकार घट रही है इसे तालिका 2 में देखा जा सकता है।

तालिका क्रमांक 2 : विश्व के प्रमुख देशों में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता में आने वाली कमी

देश	घटती प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता (घन मीटर)		
	वर्ष 1975	वर्ष 2000	वर्ष 2025
भारत*	3100	1900	1400
चीन	3000	2200	1900
पाकिस्तान	5600	2700	1600
इंग्लैण्ड	1300	1200	1200
अमरीका	11300	8900	7600
बांग्लादेश	15800	9400	6800

* भारत के पास विश्व की सर्वाधिक 18.5 करोड़ हेक्टर कृषि योग्य भूमि होने व वर्ष भर कृषि योग्य मौसम होने से जल की आवश्यकता विश्व में सर्वाधिक है एवं कुल जल का 83 प्रतिशत कृषि मे प्रयुक्त होने से जलाभाव का संकट गम्भीर रूप ले सकता है। विशेषकर, देश की आधी से अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर होने से घटती प्रति व्यक्ति जल उपलब्धि अत्यन्त चिन्ताजनक है।

विश्व में कुल 140 करोड़ घन किमी जल है इसमें से केवल 2.7 प्रतिशत या 3.7 करोड़ घन किमी ही शुद्ध जल है, जिसका भी अधिकांश भाग ध्रुवीय क्षेत्र या गहरे जल स्त्रोतों के रूप में है। भारत की जनसंख्या विश्व की 16 प्रतिशत है, लेकिन हमारे शुद्ध जल के स्त्रोत विश्व के शुद्ध जल के 4 प्रतिशत ही हैं। भारत की वार्षिक जल उपलब्धता 40 करोड़ हैक्टेर मीटर है। इसमें भी लगभग 7–10 करोड़ हैक्टेर मीटर हिमपात से प्राप्त होता है, और 30 करोड़ हैक्टेर मीटर मानसून से प्राप्त होता है। एक ओर बढ़ती ऊष्मा से जिस गति से हिमालय के हिमनद पिघल रहे हैं, हिम–जल के स्त्रोत घटते जायेंगे। कुछ वैज्ञानिक आकलन ऐसे भी हैं, कि 2035 तक ये हिमनद पूरी तरह गल सकते हैं। ऐसे में गंगा व यमुना जैसी सदा नीरा नदियाँ वर्षाकाल के बाद सूख सकती हैं, एवं देश के जल स्त्रोत का एक चौथाई भाग चुक सकता है। देश के कुल जल संसाधनों का 83 प्रतिशत भाग सिंचाई में प्रयुक्त होता है।

देश के अधिकतर भागों में वर्षा की अवधि मानसून के काल में डेढ़ दो महीनों तक ही सीमित रहती है। और वर्ष का अधिकतर भाग सूखा रहता है। परिणामस्वरूप नदियों और झीलों में शुद्ध जल की मात्रा बरसात के बाद क्रमशः घटती जाती है। इस कारण नदियों तथा जलाशयों में शुद्ध जल की मात्रा कम होती जाती है। हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 4000 घन किलोमीटर जल वर्षा व हिमपात से प्राप्त होता है। इस जल का 40–50 प्रतिशत भाग व्यर्थ ही बह कर समुद्र में जाता है। वर्षा जल संचय व संग्रह द्वारा 1000 से 1500 घन किलो मीटर जल का पुनर्भरण कर जल की उपलब्धता व शुद्धता बढ़ायी जा सकती है। आज द्रुत गति से बढ़ रही जनसंख्या की जलापूर्ति हेतु हम भूजल का अत्यधिक दोहन कर रहे हैं। इससे प्रति वर्ष देश के कई भागों में भूजल एक से तीन मीटर तक नीचे जा रहा है और इसका पुनर्भरण उस अनुपात में नहीं हो रहा है। इससे कई क्षेत्र भूजल पुनर्भरण की दृष्टि से 'डार्क' जोन में बदल रहे हैं। यह नितान्त आवश्यक है कि हम प्रकृति प्रदत्त वर्षा जल का अधिकाधिक संग्रह, संचयन और भूजल का पुनर्भरण करें। कृषि और उद्योगों में भी जल का विवेक सम्मत व मितव्ययता पूर्वक उपयोग करें हमारी जीवन शैली को भी इस प्रकार बदलना होगा कि दैनिक जीवन में घरेलू जल उपयोग में अधिकतम मितव्ययता लायें। किसानों को भी जल संरक्षण हेतु आधुनिक जल संरक्षण युक्त सिंचाई विधियों तथा उचित फसल चक्र अपनाने हेतु प्रेरित करना चाहिये।

देश के कई राज्यों में अति प्राचीन काल से वर्षा के जल के संचय की पुरातन परंपरा रही है। विशेषकर राजस्थान के मरूस्थलीय जिलों में सहस्त्राब्दियों से यह परम्परा रही है। आज तो अब सम्पूर्ण प्रदेश व देश में ही वर्षा जल का संचय व पुनर्भरण व अति आवश्यक हो गया है। वेदों, पुराणों, उपनिषदों एवं रामायण व महाभारत में भी जल प्रबन्धन व संचय के विस्तृत वर्णन मिलते हैं। हमारे पूर्वजों व ऋषियों ने भी जल की महत्ता को अत्यंत अच्छी तरह पहचाना व शास्त्रों में लिपिबद्ध किया था। जल संरक्षण का सबसे सरल उपाय वर्षा से जल का संचय करना है। वर्षा जल को छतों व जमीन पर बहते हुये एकत्रित करना एवं उसके भंडारण अथवा पुनर्भरण की तकनीक को वर्षा जल संचय कहा जाता है।

वर्षा जल संचय की आवश्यकता : इसकी आवश्यकता निम्न कारणों से होती है।

1. भूजल भंडार में वृद्धि तथा जलस्तर में गिरावट पर नियंत्रण करने के लिये।
2. पानी का सतही, बहाव, जो अन्यथा नालों में बह कर चला जाता है, उसको कम करके भूमि में रिवास बढ़ाने के लिये।
3. सड़कों पर पानी भरने से रोकने के लिये।
4. जल की मानव व जीव सृष्टि के उपयोग के लिये उपलब्धता को बढ़ाने के लिये।
5. भू–जल के प्रदूषण को कम करने व उसकी शुद्धता बढ़ाने के लिये।
6. भूजल के अतिदोहन के कारण खाली हुए जलभृतों में पुनः जल भरने के लिये।
7. पर्याप्त पुनर्भरण की कमी वाले जलभृतों में पुनः जल भरने के लिये।
8. भूजल की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिये।
9. भविष्य में उपयोग के लिए अधिशेष जल को संचित करने के लिये।
10. तूफानी जल प्रवाह को रोकने तथा मृदा कटाव को कम करने के लिये।
11. भूस्खलन को रोकने अथवा बंद करने के लिये हाइड्रोस्टेटिक दबाव बढ़ाने के लिये।

12. तटीय क्षेत्रों में लवणता प्रवेश रोकने के लिये।

13. पुराने कुओं और बोरवेल के साथ–साथ प्रचलनात्मक कुओं को भी साफ करके पुनर्भरण संरचनाओं के रूप में प्रयोग करने के लिये।

जल के अपव्यय पर नियंत्रण : सिंचाई में व जल के घरेलू उपभोग में, जल संरक्षण परम आवश्यक है। सिंचाई में आवश्यकता से अधिक जल प्लावन से भूमि ऊसर हो सकती हे। जल के विवेकहीन घरेलू उपभोग से भी प्रदूषण की समस्या उपजती है।

जल संचयन व पुनर्भरण प्रमुख विधियाँ :

जल संचयन की दो मुख्य विधियाँ है। I. छत के जल का संग्रह व पुनर्भरण II. सतही अपवाह अर्थात जमीन पर बहने वाले जल का संचय व पुनर्भरण। भवनों की छत से वर्षाजल संग्रहण तकनीक गिरते भूजल स्तर को बढ़ाने का कारगर कदम है। इसमें वर्षा के दौरान व्यर्थ जा रहे जल को रोककर उसका व्यापक प्रबन्धन किया जा सकता है। इमारतों की छतों से बरसाती पानी के संग्रह की व्यवस्था कम खर्चीली एवं अधिक प्रभावशाली है। इससे भूजल की गुणवत्ता तथा पुनर्भरण क्षमता में सुधार होता है।

I. छत पर प्राप्त होने वाले वर्षा के जल से भूजल का पुनर्भरण

अपने मकान या कार्यालय अथवा अन्य किसी भी प्रकार के भवन की छत से प्राप्त वर्षाजल से भूजल का पुनर्भरण निम्नलिखित तरीकों द्वारा किया जा सकता है।

1. **जमीन में पानी उतारने का गड्ढा** : एक हजार वर्ग फीट से छोटी छत वाले छोटे मकानों के लिये यह तरीका बहुत ही उपयुक्त है। इससे बरसात के मौसम में किसी भी छोटी सी छत से भी लगभग एक लाख लीटर पानी जमीन में उतारा जा सकता है। यह गड्डा या पिट किसी भी आकार का हो सकता है। गोलाकार, वर्गाकार या आयताकार। साधारणतया यह गड्ढा 3 से 5 फीट चौड़ा और 6 से 10 फीट गहरा बनाया जाता है। खुदाई के बाद इसमें कंकड़, रोड़ी और बजरी भर दी जाती है और ऊपर से मोटी रेत डाल दी जाती है। छत को अच्छी तरह साफ करके उसका पूरा पानी एक पाइप से नीचे उतारकर उसी पाइप को इस गड्डे से जोड़ दिया जाता है। इस विधि में यह आवश्यक है कि पहली एक दो बरसात का पानी जमीन में न उतारा जाए। इसमें कोई ज्यादा खर्च नहीं लगता, लगभग 2 हजार रूपयों में कार्य हो जाता है।

2. **खाई बनाकर पुनर्भरण करना व वर्षा जल का पाइप उसमें जोड़कर** : दो से तीन हजार वर्ग फीट क्षेत्रफल की छत वाले मकानों की खाली जमीन पर चारों ओर बाउंड्रीवाल के अन्दर खाई खोद कर जल पुनर्भरण करना उचित रहता है। विशेषकर जब उथली गहराई पर जब पर्याप्त मोटाई की मिट्टी की ऐसी परत उपलब्ध होती है, जिसमें से पानी नीचे रिस सके, तब यह तरीका अत्यंत कारगर होता है। मकान के आस–पास बाउंड्रीवाल से सटे हुए खाली कच्चे भाग में चारों तरफ 3 से 5 फुट गहरी एवं लगभग 1 फीट चौड़ी खाई या नाली खोदी जानी चाहिये। तब उसमें कंकड़ और रोड़ी भर दी जानी चाहिये। छतों के चारों कोनों या बीच से पाइप लाइन उतारकर इस नाली से उन्हें जोड़ दिया जाता है। इससे छत का सारा पानी व्यर्थ न जाकर खाई में से नीचे उतर जाता है। इससे भूजल का स्तर ठीक हो जाता है।

इस पद्धति का उपयोग स्कूल, कॉलेजों के खेल मैदान, सड़क के किनारों बड़े सामुदायिक केन्द्रों एवं पार्कों व बगीचों में किया जा सकता है।

3. **पहले से विद्यमान कुँओं में पानी उतारना** : घर के अंदर या बाहर उपलब्ध कुँओं में जल के पुनर्भरण या पुनर्नीरण करने के लिये इस विधि को काम में लिया जा सकता है। सूखे कुओं या अल्प जल उपलब्धता वाले कुओं को फिर से जल से परिपूर्ण करने के लिये किया जा सकता है। पहले कुएं के तल तथा उसकी दीवारों को पूरी तरह साफ कर लेना चाहिए, उस पर ढक्कन लगाने की व्यवस्था भी कर लेनी चाहिए। इसके बाद घर की छत से एक पाइप लाइन उतारकर उसे सीधे कुएं के तल तक पहुंचा देना चाहिए। वर्षा के दौरान छत से प्रवाहित होकर आने वाले जल से सूखा कुआं जल्दी पानी से भर जाता है और वही पानी कुएं के तल में प्यासी जमीन के अंदर भी उतरता है जो भविष्य में कुएं पानी से युक्त रखेगा। उस कुएं को नियमित साफ करना चाहिए तथा कुएं में जीवाणुनाशक दवाइयां तथा क्लोरीन भी हमेशा डालते रहने से जल शुद्ध रहेगा। प्रारंभिक वर्षा का एक या दो बार का पानी कुएं में न उतारा जाए तो बेहतर रहेगा। उस जल में तेजाबी ऊसर हो सकता है। वायुमण्डल में उपलब्ध सल्फर डाई आक्साइड व नाइट्रस आक्साइड के कारण ऐसा हो सकता है।

4. **नलकूप में छत के जल का पुनर्भरण** : पांच सौ से पच्चीस सौ वर्गफीट छत वाले सब प्रकार के छोटे मकानों के लिये यह पद्धति उपयुक्त है। छत पर वर्षा में आने वाला पानी ढाई इंच (75 मिमि व्यास वाले पाइप से हैंडपम्प या नलकूप तक पहुंचाया जाता है। पाइप को नलकूप से जोड़ने के पहले इसमें एक फिल्टर का उपयोग अत्यंत आवश्यक है। फिल्टर पीवीसी पाइप का ही बना होता है। छत यदि 1500 वर्ग फीट से कम हो तो फिल्टर 6 इंच व्यास का और इससे अधिक हो तो यह फिल्टर 8 इंच व्यास का होना चाहिए, इसकी लंबाई 3 से 4 फीट होनी चाहिए। यह तीन भाग में विभाजित होता है, बीच में पीवीसी की जाली लगी होती है तथा चार खंडों में गिट्टी बजरी, कोयला व रेत भर देते हैं। इस पद्धति में काई अधिक खर्च नहीं आता है, दो से तीन हजार के बीच में इसका निर्माण कराया जा सकता है। घर में या घर के आस–पास के नलकूप को इस पद्धति से पुनर्भरित कर सकते हैं। पहली एक दो वर्षा का पानी नलकूप में डालने के बदले बहा दिया जाना चाहिए।

5. **बड़े भवनों के नलकूप का पुनर्भरण करना** : सरकारी या गैर सरकारी वाणिज्यिक भवनों एवं उद्योगों के बड़े–बड़े भवनों की छतों का वर्षाकाल में लाखों लीटर पानी नालियां में बह जाता है। इन छतों पर बड़ी मात्रा में एकत्रित पानी को जमीन के गहरे जलस्तर में उतारना थोड़ा खर्चीला हो सकता है, परंतु जनहित में यह करना ही चाहिए। भवन की छत के अलग–अलग स्थानों से बरसात का पानी पीवीसी पाइपों द्वारा संग्रहण कक्षों में लाकर एक फिल्टर पिट में डाला जाता है। फिल्टर पिट चार भागों में बंटा होता है। इसमें पहले भाग में गिट्टी, बजरी, कोयला एवं रेत भरी होती है, हर भाग जाली द्वारा अलग–अलग रखा जाता है। वर्षा का पानी इस फिल्टर से छनकर पिट के शेष भाग में चला जाता है, जहां से सीधा इसे पाइप द्वारा नलकूप से जोड़ दिया जाता है, पाइपों को ढलान में रखा जाता है ताकि पानी रूके नहीं। ध्यान रखें कि पहली बरसात का एक दो बार का पानी नलकूप के अंदर उतारने के बदले अन्य कार्यों में उपयोग करना चाहिए।

6. **शाफ्ट द्वारा भूगर्भ के जल का पुनर्भरण** : पुनर्भरण शाफ्ट एक प्रकार का 2 फीट से 6 फीट व्यास वाला छोटा कुआं ही होता है जिसकी गहराई 25 से 50 फीट तक हो सकती है। इसका व्यास बरसाती पानी के उस स्थान की उपलब्धता पर निर्भर करता है। चिकनी मिट्टी की सतह वाले मैदानी क्षेत्र में जहां कम गहराई पर जलस्तर होता है, वहां इसका निर्माण कराना चाहिए। शाफ्ट हाथ से अथवा मशीन से खोदी जा सकती है, शाफ्ट को कंकड़, बजरी और साफ हुई रेत से भरना चाहिए। इस शाफ्ट का निर्माण भवनों से 30 से 50 फीट की दूरी पर करना चाहिए। शाफ्ट

के ऊपर की रेत की परत को हटाकर नियमित रूप से साफ कर दोबारा भरना चाहिए। वर्षा में बहकर जाने वाले जल को इस शाफ्ट की ओर मोड़ देना चाहिये।

7. खाई या शाफ्ट व नलकूप द्वारा पुनर्भरण

शहरी क्षेत्रों में जलोढ़ मिट्टी क्षेत्रों में हो कई मकानों का पानी जब बहकर जाता है एवं जमीन के नीचे ऐसी मोटी मिट्टी की परत हो, जिसमें से बरसाती पानी नीचे नहीं उतर सकता है। वहां यह तरीका काम में लिया जाना चाहिये। वर्षा के मौसम में बरसाती पानी कितना उपलब्ध होता है, उसके अनुसार 6 से 10 फीट चौड़ी और इतनी ही गहरी खाई खोदकर पानी को नीचे नहीं उतरने देने वाली मिट्टी की परत निकाल दी जाती है। तथा नीचे इस संचित जल को नीचे के मिट्टी को भेद न सकने वाली परत पर एक नलकूप खोदकर छतों का व अन्रू भी बहकर जाने वाले पानी को जमीन के नीचे उतारा जाता है, जिससे जमीन के अंदर के जल भंडार का पुनर्भरण होता है। नलकूप की ऊपरी केसिंग छेद वाली पाइप की होती है, खाई को बोल्डर, बजरी और मोटी रेत से भर दिया जाता है। यह पुनर्भरण नलकूप है, जिससे उस स्थान की जमीन का जल भंडार बढ़ता है। आवश्यकता होने पर इस खाई में एक दूसरा पाइप भी लगाया जा सकता है, जिसका केसिंग पाइप जमीन की सतह के ऊपर तक होता है तथा उससे पानी निकाला जा सकता है।

टांकों में जल संचयन एवं भूजल पुनर्भरण

ऐसे क्षेत्र जहां मृदा या मिट्टी की गइराई कम है तथा अधिकतर भागों में चट्टानें 10—12 फिट की गहराई पर आ जाती हो एवं प्राकृतिक रूप से वर्षा जल का जलभृत में रिसाव कम मात्रा में हो पाता हो उस स्थानों पर टांका का निर्माण कर छतों के वर्षाजल का संचयन किया जा सकता है। इसी प्रकार जिन क्षेत्रों में भूजल की गुणवत्ता पेयजल हेतु भूगर्भ का क्षरीय जल अनुपयुक्त हो, यथा मारवाड़ क्षेत्र। उन स्थानों पर फिल्टर फिट करने के उपरांत वर्षाजल को टांकों में संचित कर पेयजल हेतु उपयोग में लाया जा सकता है। टांकों का आकार उपलब्ध वर्षाजल एवं क्षेत्र की भौगोलिक एवं भूगर्भिय स्थिति के अनुसार निर्धारित किया जाता है। टैंक के पूर्ण भराव के उपरांत यदि आवश्यकता हो तो जल को शॉफ्ट / पुनर्भरण बोर होल के माध्यम से जलभृत में पुनर्भरित किया जा सकता है।

II. सतही अपवाह (बहने वाले) जल से पुनर्भरण

1. अंतःस्रवण टैंक या रिसाव द्वारा भूजल पुनर्भरण

जहां पर वर्षा जल धरातल से बहकर चला जाता है व भूमि में जल का सहज रिसाव कम हो पाता है, वहां पर एक 1—5 लाख घन मीटर जल की क्षमता वाला अंतःस्रवण टैंक का निर्माण जल प्रवाह मार्ग पर अथवा प्रवाह के कुछ भाग को मोड़ कर किया जा सकता है। अतिरिक्त शेष जल का प्रवाह पूर्व की भांति बनाये रखा जा सकता है। अंतःस्रवण टैंक की तह में अत्यंत पारगम्य सतह होने पर ही उस टैंक के जल का रिसाव भूगर्भ में आसानी से होता है और भूजल का पुनर्भरण होता रहता है। निर्माण की सतह पर एकत्र जल विभिन्न कार्यों के लिये भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार के टैंक का निर्माण कच्ची चट्टानें जिनकी दरारें नीचे बहने वाली जलधारा तक फैली हों, पर किया जाना चाहिए। टैंक का आकार तल में आने वाली जलभृत इकाई की रिसाव क्षमता के अनुसार रखा जाता है। सामान्यतः टैंक का आकार 1 से 5 लाख घनमीटर जल की भंडारण क्षमता के लिये उपयुक्त होता है। टैंक में जमा जल का कॉलम 2 से 4 मीटर तक रखना उपयुक्त होता है। अंतःस्रवण (परकोलेशन) टैंक के निर्माण का उद्‌देश्य वर्षाजल का भंडारण एवं पुनर्भरण करना होता है। अतः तल से नीचे रिसाव होने दिया जाता है।

2. गैबियन अवरोधकारी संरचना से भूजल पुनर्भरण

यह एक प्रकार का ऐसा चेक डैम होता है जिसका निर्माण सामान्यतः छोटी जल–धाराओं पर स्थानीय रूप से उपलब्ध बोल्डर्स को जमा कर के या उन बोल्डर्स को लोहे के तारों की जालियों में डालकर वहां से बहकर जा रही जलधारा के प्रवाह के अंशतः अवरूद्ध किया जाता है। कुछ जल रूक जाता है तथा शेष उस बोल्डर्स की संरचना के ऊपर से प्रवाहित हो जाता है। इस प्रकार अंशतः रूका हुआ जल, भूजल भंडार को पुनर्भरित करता है। ये संरचनाएं भूमि कटाव रोकने में भी सहायक होती है तथा इनके निर्माण में खर्च भी कम आता है। सामान्यतया संरचना की ऊंचाई 0.5 मीटर तथा विस्तार 10 से 15 मीटर होती है।

3. रोक बन्ध या चेक डैम द्वारा भूजल पुनर्भरण

जलावरोधक बांध या रोक बन्ध अर्थात चेक डैम (Check Dam) का निर्माण अति सामान्य ढलान वाली छोटी जल धाराओं पर किया जाता है। चयनित स्थान पर जल के पारगम्य स्तर की पर्याप्त मोटाई होनी चाहिए जिससे एकत्रित जल कम समयावधि में पुनर्भरित हो सके। अत्यंत सामान्य ढलान छोटी जल धाराओं पर इसका निर्माण मिट्टी का अवरोधक चिकनी मिट्टी से भरे बैग जमा कर अथवा पत्थर की 0.5 से 2 मीटर तक की कम ऊंची दीवार बनाकर उस पर मिट्टी डालकर किया जा सकता है। शेषजल आगे जाता रहता है। इसके बहाव के नीचे वाले क्षेत्र भी जल से वंचित नहीं रहते हैं। अत्यधिक जल प्रवाह द्वारा होने वाले मिट्टी के कटाव को रोकने के लिये भी जल के अनुप्रवाह में जल तल्प या अवरोधक बनाये जाते हैं। किसी भी क्षेत्र में जल के अनुप्रवाह में इस प्रकार के कम लागत के चेक डैम की श्रृंखला बनाई जा सकती है।

आज जिस गति से देश के कई भागों में जल संकट उत्पन्न हो रहा है और कई क्षेत्र डार्क जोन (Dark Zone) में बदल रहे हैं उसे देखते हुये वर्षा जल का संचय व भूजल का पुनर्भरण परम आवश्यक है। हमारा प्रति व्यक्ति जल उपभोग भी तेजी से बढ़ रहा है। जल प्रधानता वाली फसलों की कृषि भी बढ़ रही है। इन सभी तथ्यों के आलोक में वर्षा के जल का संचय एवं उस जल से भूगर्भ के जल का पुनर्भरण आवश्यक हो जाता है।

आठवां अध्याय

अनियन्त्रित उपभोग की समस्या

आज पर्यावरण विनाश का प्रमुख कारण, विकास की परिभाषा का अधिकतम प्रति व्यक्ति उत्पादन व उपभोग पर आधारित होना है। यथा, जिस देश में प्रति व्यक्ति ऊर्जा व खनिज सहित विविध उत्पादों का जितना अधिक उत्पादन व उपभोग है, उसे उतना ही विकसित माना जाता है, अर्थात् जो देश इन सबके उत्पादन व उपभोग में सर्वाधिक पर्यावरण विनाश करता है, वही सर्वाधिक विकसित माना जाता है। आज अमेरिका में प्रति 1000 व्यक्ति पर 765 व यूरोप में 300 वाहन हैं। चीन में 2005 तक प्रति हजार व्यक्तियों पर 24 कारें थी जो आज बढ़कर 40 हो गयी है। अब 2010 के अन्त तक चीन विश्व का सबसे बड़ा कार उत्पादक व उपभोग वाला देश भी बन गया है। बढ़ते वैश्विक तापमान का मुख्य कारण ग्रीन हाउस गैसों का बढ़ता उत्सर्जन है। चीन आज सर्वाधिक ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन करता है। अमेरिका चीन के बाद है, मगर चीन का उत्सर्जन अमेरिका के दुगने से भी अधिक है।

वस्तुतः जिस देश का ऊर्जा व अन्य संसाधनों का जितना अधिक उपभोग है, वह उतना ही अधिक पर्यावरण विनाशकर्ता है। इसलिये यदि प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग की दृष्टि से भी देखें तो भारत का प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग मात्र 631 किलोवाट हावर (Kwh) है। जबकि कनाडा, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, जापान, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, रूस व इटली का प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग क्रमशः 17,179 Kwh, 13,338 Kwh, 11,126 Kwh, 8076 Kwh, 7689 Kwh, 7030 Kwh, 6206 Kwh, 5642 Kwh, व 17,179 Kwh हैं। विद्युज्जन भी एक प्रमुख प्रदूषणकारी क्रिया है। उपरोक्त ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन व विद्युत उपभोग एवं खनिजों सहित अन्य संसाधनों के उपभोग में राष्ट्रों के बीच भारी अन्तराल से ही प्रतीत हो जाता है कि जो व्यक्ति व देश आर्थिक दृष्टि से जितने सम्पन्न है, वे उतना ही अधिक संसाधनों का उपभोग कर वातावरण का विनाश कर रहे हैं। साधनों के उपभोग में यदि विश्व के 20 प्रतिशत धनाढ्यतम व निर्धतनम व्यक्तियों के बीच के अन्तर पर एक दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्पन्नतम वर्ग का अनियन्त्रित उपभोग ही आज की पर्यावरण विनाश का कारण है।

विश्व की धनाढ्यतम 20 प्रतिशत जनसंख्या आज गैर सरकारी क्षेत्र के कुल उपभोग का 87 प्रतिशत उपभोग कर रही है। वहीं विश्व के 20 प्रतिशत निर्धनतम लोग गैर सरकारी क्षेत्र के कुल उपभोग का मात्र 1.32 प्रतिशत ही उपभोग कर रहे हैं। विश्व की 20 प्रतिशत सर्वाधिक धनी जनसंख्या कुल ऊर्जा का 56 प्रतिशत व निर्धनतम 20 प्रतिशत केवल 4 प्रतिशत उपभोग कर रही है। विश्व के कुल कागज उत्पादन का 84 प्रतिशत विश्व की 20 प्रतिशत धनाढ्यतम व मात्र 1.3 प्रतिशत का 20 प्रतिशत निर्धनतम जनसंख्या उपभोग कर रही है। कारों के उपयोग की दृष्टि से 86 प्रतिशत कारें 20 प्रतिशत सम्पन्नतम लोगों के पास व 1.4 प्रतिशत कारें विश्व के 20 प्रतिशत निर्धनतम लोगों के पास हैं। उपभोग में यह विषमता विगत 4 दशकों में बढ़ती ही चली गयी है। विश्व के सबसे धनी 20 प्रतिशत व सबसे निर्धन 20 प्रतिशत के बीच उपभोग व्यय अनुपात 1970 में 30:1 था, जो 1985 में बढ़कर 77:1 हो गया एवं नव उदारवादी आर्थिक नीतियों के चलते धनी व निर्धन के बीच यह खाई बढ़ती ही जा रही है। इसलिये वैश्विक प्रदूषण की दृष्टि से भी कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन की दृष्टि से 56 प्रतिशत उत्सर्जन विश्व के सबसे धनी 20 प्रतिशत का व 3.1 प्रतिशत उत्सर्जन सबसे निर्धन 20 प्रतिशत का है। प्रति व्यक्ति उत्पादन व प्रति व्यक्ति उपभोग आधारित विकास की आधुनिक परिभाषाओं के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति व राष्ट्र में अपने उत्पादन व उपभोग को अधिकतम करने की स्पर्द्धा, पर्यावरण के इस क्षरण को अधिकाधिक विषमता की ओर ही ले जायेगी। प्रति व्यक्ति उपभोग व उत्पादन में वृद्धि के इस स्पर्द्धात्मक दौर में जहाँ एक ओर तो देश व विश्व के अधिकांश खनिज संसाधन आगामी 30 से 60 वर्षों के चूक ही जायेंगे, सारे सघन वन विरल होते–होते नाम मात्र के रह जायेंगे। पर्वतीय क्षेत्रों की मिट्टी की परत नष्ट होकर वे सभी क्षेत्र स्थायी रूप में हरीतिमा विहीन हो जायेंगे। रासायनिक कृषि से कृषि योग्य भूमि बंजर होती चली जायेगी। वायुमण्डल इतना विशाक्त हो जायेगा कि बिना मास्क के खुले में चलना–फिरना कठिन हो सकता है। कीटनाशकों व रसायनों से भू–गर्भीय जल सहित सारे जल स्त्रोत इतने प्रदूषित हो जायेंगे कि रिवर्स ऑस्मोसिस से फिल्टर किये बिना जल पीना सम्भव नहीं रह जायेगा। आगामी पीढ़ियों के लिये हम न तो कोई संसाधन छोड़ कर जायेंगे एवं नहीं ही उनके लिये यह धरती निवास व जीवन निर्वाह के लिये वैसी ही निरापद रहेगी, जैसी हमें हमारे पूर्वजों से हमें प्राप्त हुयी है।

नवां अध्याय

समाधान : धारणक्षम उपभोग, धारणक्षम विकास एवं एकात्म मानव दर्शन

धारणक्षम या टिकाऊ विकास (Sustainable Development) हेतु आवश्यक है कि हम अपने उपभोग को ''धारणक्षम उपभोग (Sustainable Consumption) की सीमा में लायें, अर्थात् **हम उपभोग को इस प्रकार कम करें कि, समस्त संसाधनों की उपलब्धि अनन्तकाल तक हमारी भावी पीढ़ियों के लिये सुलभ रहे। इसे सुनिश्चित करने हेतु हमें भारत के सनातन चिन्तन की युगानुकूल व्यख्या करते हुये स्व. प. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित विकास के ''एकात्म मानव दर्शन'' के विचार को अपनाना होगा।**

धारणक्षम उपभोग या संधारणीय उपभोग (Sustainable Consumption) : यदि हम अपना प्रति व्यक्ति उपभोग बढ़ाते चले गये और उसमें भी अ–नवकरणीय **(non-renewable)** संसाधनों का ही उपभोग करते चले गये तो यह अधिक समय तक नहीं चल पायेगा। इसी प्रकार नवकरणीय साधनों का भी उनके 'नवकरण की गति' (rate of renewal) से अधिक गति से किया तो वे भी नष्ट हो जायेंगे। यथा ताम्बा, लोहा, सीसा, जस्ता, कोयला, पेट्रोलियम व अन्य खनिज आदि अ–नवकरणीय हैं। जल, जल विद्युत, वायुजनित ऊर्जा, वनस्पति जगत आदि नवकरणीय है जो पुनः प्राप्त हो सकते हैं। इन नवकरणीय साधनों का उपभोग भी उनके पुनर्जनन की गति से अल्प या धीमी गति से करने पर ही वे भावी पीढ़ियों के लिये सुलभ रहेंगे। आज विश्व में वाहनों व अन्य धात्विक उत्पादों का जो प्रति व्यक्ति उपभोग है उसकी पूर्ति प्रति व्यक्ति 12–15 टन वार्षिक टन की दर से भू–गार्भिक खनिजों का 'खनन व प्रविधेयन (Mining and Processing) से ही होती है। अब यदि हम जितना इनका उपभोग बढ़ायेंगे उतनी ही धरती जर्जर होकर अन्ततः संसाधन विहीन होती चली जायेगी। चीन में 2005 में प्रति एक हजार जनसंख्या पर 24 कारें थी अब 40 हो गयी है। चीन आज विश्व का सबसे बड़ा कार उत्पादक देश बनने जा रहा है। यूरोप में प्रति 1000 जनसंख्या पर 300 व अमेरिका में 765 वाहन हैं। क्या शेष विश्व में 100 या 50 कार प्रति हजार छोड़ 20 कार प्रति हजार की संख्या भी धारणक्षम हो सकेंगी? इसी प्रकार अन्य उत्पादों का भी विचार करिये। इस प्रकार अ–नवकरणीय (Non-renewable) साधनों के प्रति व्यक्ति उपभोग में प्रत्येक वृद्धि हमारे कल को उजाड़ने वाली ही है। नवकरणीय साधनों के उपभोग में वृद्धि की वर्तमान दर भी विश्व में इतनी अधिक है कि उनका पुनर्जनन सम्भव नहीं होने से, वह हमारे भावी विकास को चौपट करेगी। आज विश्व में कई पादप व जन्तु प्रजातियाँ भी लुप्त हो गयी हैं।

व्यावहारिक जीवन में हमें ऊर्जा सहित सभी अनवकरणीय (Non-renewable) संसाधनों के उपभोग पर सर्वाधिक अंकुश लगाना होगा। ताप विद्युत गृह में प्रत्येक ग्राम कोयला जलने पर कार्बन डाई आक्साईड एवं अन्य ग्रीन हाउस व प्रदूषणकारी गैसें निकलेंगी। हमें देश में अपने सभी ताप विद्युत गृहों (Thermal Power Plants) को पूर्ण क्षमता पर संचालित करने पर 75 करोड़ टन कोयला जलाना ही होगा। यदि हम प्रति दिन 1 यूनिट अर्थात 1 KWH विद्युत भी बनायेंगे तो वर्ष में 365 KWH विद्युत बनेगी। यदि 100 करोड़ लोगों द्वारा प्रतिदिन 1 यूनिट बिजली की बचत की जाए तो एक वर्ष में 365 करोड़ KWH बिजली की बचत होगी और करोड़ों टन कोयला कम जलेगा। इसी प्रकार वाहनों में प्रयुक्त पेट्रोल–डीजल में हम प्रतिदिन उपभोग 1 लीटर भी कम करेंगे तो 365 करोड़ लीटर कार्बन–ईन्धन कम जलने से कम प्रदूषण फैलेगा।

हम प्रतिवर्ष कई किलोग्राम डिटर्जेण्ट (वाशिंग पाउडर) कपड़े धोने में काम लेते हैं। लाखों टन डिटर्जेण्ट पानी के साथ नालियों में जाता है और बड़ी मात्रा में जमीन में रिसता है। डिटर्जेण्ट में प्रयुक्त घातक रसायन सैकड़ों वर्षों में भी विघटित नहीं होते हैं। ये रसायन अविघटनीय (Non-biodegradable) होने से हमारे भूगर्भिक जल व

मिट्टी को प्रदूषित करते रहेंगे। बहुत पहले हम कपड़े धोने में साबुन (तैल व कास्टिक से बना) उपयोग करते थे। वह जैव–विघटनीय (Bio-degradable) होने से कम नुकसान देह तत्वों में विघटित हो जाता था। इसी तरह आज भी जैव विघटनीय कपड़े धोने के पाउडर (Bio-degradable Detergents) भी बनाये जा सकते हैं। यद्यपि, वे कुछ महंगे जरूर होंगे। तथापि पर्यावरण रक्षार्थ हमें जैव–विघटनीय श्रेणी के कपड़े धोने के पाउडर ही अपनाने चाहिये अथवा पारम्परिक साबुन का उपयोग ही अधिकाधिक करना चाहिये। कपड़े धोने के पाउडर के कठोर गुणवत्ता मानक लागू करना भी आवश्यक हैं। कई डिटर्जेण्ट एजेण्ट ग्राहकों को भ्रमित करने हेतु निश्चित से अधिक मात्रा में झाग लाने वाले रसायन (foaming agent) मिला देते हैं। उससे उपभोक्ता उस डिटर्जेण्ट को बेहतर समझ लेता है। लेकिन, उससे जल का अत्यधिक दुरुपयोग होता है।

हमारी पृथ्वी पर सब कुछ परिमित है। आज हम अपनी जीवन शैली ऐसी कर रहे हैं कि अधिक बड़ा मकान, अधिक बड़ा कार्यालय, अत्यधिक फर्नीचर आवश्यक होता जा रहा है। प्रति वर्ष या प्रति 2 वर्ष में फर्नीचर बदल देने आदि से लकड़ी, स्टील, एल्यूमिनियम आदि का अपव्यय होता है। यदि हम प्रति व्यक्ति अधिकाधिक निर्मित भवन के क्षेत्रफल का उपयोग करेंगे तो इस सम्पूर्ण निर्माण हेतु आवश्यक मात्रा में पत्थर, गिट्टी, बजरी, स्टील, सीमेण्ट आदि के उपयोग से सम्भव है, कि कदाचित कभी पृथ्वी के कई भाग पर्वतविहीन हो जायें। अतएव हमे अपने उपभोग को परिमित करना होगा। इस हेतु विकास की परिभाषा को बदलना होगा। जिस व्यक्ति का उपभोग जितना न्यूनतम हो व कार्बन पदचिह्न अर्थात कार्बन फूट प्रिण्ट जितना न्यून हो उसे विकासित मानकर उसके जीवन को प्रशंसनीय मानना चाहिये। हममें से प्रत्येक व्यक्ति को प्रति वर्ष प्रति माह व प्रति सप्ताह अपना कार्बन फूट प्रिण्ट कम करते चलना चाहिये। इसके साथ ही पर्यावरण संरक्षण व संवर्द्धन की अपने जीवन का पवित्रतम व सर्वाधिक पुण्यप्रद कर्त्तव्य मान कर, इस कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिये। इस हेतु हमें अपने उपभोग को परिमित करते हुये जल संचय, जैव विविधता व जैविक कृषि जैसे सभी उपाय स्वयं अपनाने चाहिये और इनका अधिकतम प्रसार करना चाहिये।

इस सम्पूर्ण विनाशकारी विकास क्रम का आभास हमारे मनीषियों को लाखों वर्ष पूर्व ही था। इसलिये ईशावास्योपनिषद में कहा है कि यह सम्पूर्ण विश्व ''परब्रह्म परमेश्वर से व्याप्त है, इसका त्याग पूर्वक भोग करो''। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत पुराण में कहा है कि जितने न्यूनतम उपभोग से व्यक्ति की उदरपूर्ति हो जाये उतने पर ही उसका अधिकार है। उससे अधिक ग्रहण करने, संचित करने या अपव्यय करने वाला चोर है और दण्डनीय है यथा –

> यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्व देहिनाम।
> अधिकंयोऽभिमन्येत से स्तेन दण्डमर्डहति।। — श्रीमद्भागवत पुराण

अतःएव हमें अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति जितना ही न्यूनतम उपभोग करना चाहिये। यदि, हम अकारण विद्युत का अपव्यय करते है, तो कहीं न कहीं ताप विद्युत गृह में कोयले का दहन होगा, कार्बनडाइ आक्साइड व अन्य गैसें वायुमण्डल को प्रदूषित करेंगी और कोयले के भण्डार चुकेंगे। प्रत्येक वस्तु या सेवा के उपभोग में हमें यही देखना होगा कि इससे पर्यावरण की कितनी क्षति हो रही है? हम कितने ''कार्बन फूट प्रिण्ट'' (Carbon foot print) या ''कार्बन पग चिन्ह'' या ''प्रदूषक पग चिन्ह'' छोड़ रहे हैं। हमे अपनी एक कार्बन फूट प्रिण्ट तालिका बनानी चाहिये और उसमे अपने कार्बन फूट प्रिण्ट को प्रति सप्ताह घटाने के प्रयास करने चाहिये।

एकात्म मानव दर्शन (Integral Humanism) : पर्यावरण के क्षेत्र में बढ़ती विषमताओं और आर्थिक विकास की दृष्टि से 50 वर्ष पूर्व, पं. दीन दयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित 'एकात्म मानव दर्शन' आज एकमात्र समाधान प्रतीत होता है।

यदि व्यक्ति स्वयं को सम्पूर्ण वैश्विक संरचना के एक अंगागी घटक के रूप में मानकर चलता है, तब ऐसी स्थिति में हमारे सारे व्यवहार पर्यावरण व समाज के प्रति सहिष्णुता पूर्ण होंगे। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, जीव–सृष्टि और परमेष्टी परस्पर अवलम्बित हैं। इन सबके बीच परस्पर संबन्धों को दृष्टिगत रखते हुए ही विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को अपना उपभोग व जीवन–चर्या निश्चित करनी चाहिए। पं. दीनदयाल जी के इस विचार के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को यह विचार मन में रखना चाहिये कि, वह स्वयं कोई स्वायत्त या सम्प्रभु इकाई नहीं होकर वह अपने परिवार व समाज का अंग है। प्रत्येक परिवार, अपने समाज या समुदाय का अंग है। समाज, या समुदाय राष्ट्र का अंग है। राष्ट्र विश्व का, विश्व इस सम्पूर्ण सृष्टि का, और यह सृष्टि उस परमेष्टी का अंग है जो इस अनन्त ब्रह्माण्ड में संव्याप्त है। इसलिये हमारा उपभोग इन सभी घटकों के बीच समन्वय पर आधारित होना चाहिये।

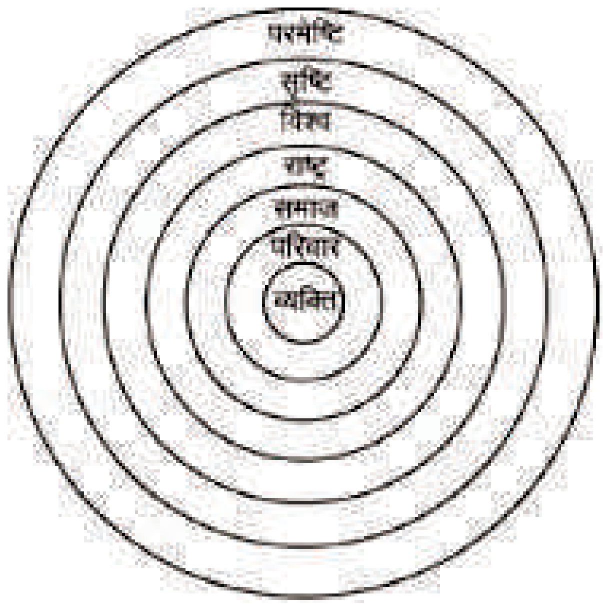

वस्तुतः मानव, परिवार, समाज, विश्व आदि के रूप में ये वलय भी पृथक–पृथक या खण्ड–खण्ड पृथकता वाले घटक न होकर एक ही समेकित इकाई के परस्पर अवलम्बित व अविच्छिन्न घटक हैं। इन्हें, एकात्म मानव दर्शन के भारतीय चिन्तन की व्याख्या करते हुये, स्व. दीनदयाल जी उपाध्याय ने निम्नानुसार अखण्ड मण्डलाकार रूप में दर्शाया है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने नवकरणीय संसाधनों (Renewable Resources) तक ही सीमित रखे और सारे क्रिया कलापों का इस प्रकार नियमन करें जिससे व्यक्ति से परमेष्ठी तक सृष्टि के सभी घटकों में समन्वय बना रहे, तब ही सृष्टि का क्रम निर्बाध रह सकता है। व्यक्ति, जीव सृष्टि व प्रकृति के बीच स्थायी सामंजस्य ही एकात्म मानव दर्शन का लक्ष्य है। सृष्टि के सभी घटकों में एक अटूट अन्योन्याश्रित परस्पर अवलम्बन है। इसे ही पारिस्थितिकीय सम्बन्ध कहते हैं। मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य यही होना चाहिये कि सृष्टि के इस पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखने में स्वयं को पूरी तरह समर्पित करें। सृष्टि के प्रत्येक घटक व सभी घटकों की पारिस्थितिकीय संरचना व सन्तुलन को अक्षुण रखकर ही अपने भविष्य को सुरक्षित रख सकते हैं।

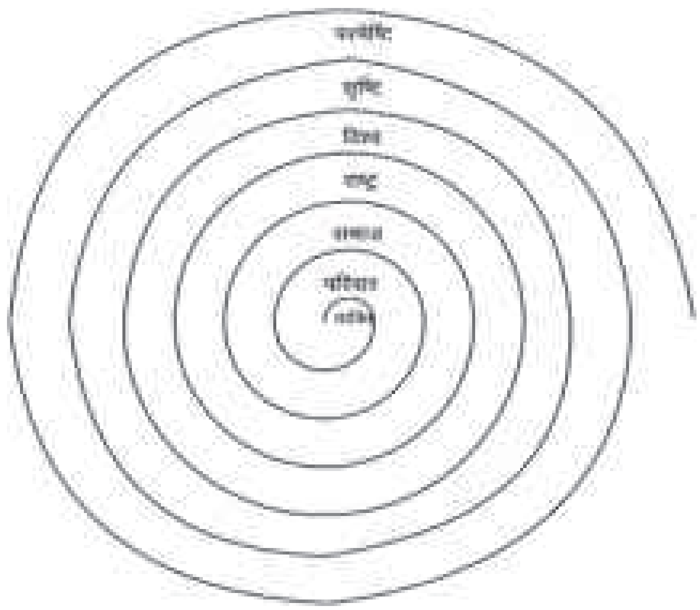

इस प्रकार व्यक्ति यदि समष्टि से एकात्मकता का अनुभव कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु न्यूनतम ग्रहण करे और वह भी केवल नवकरणीय साधनों से तब ही यह सृष्टिक्रम अनवरत निर्बाध जारी रहेगा। यही बात 1965 में प0 दीनदयाल उपाध्याय ने 50 वर्ष पूर्व प्रतिपादित की थी। यह वर्ष एकात्म मानव दर्शन के विचार का स्वर्ण जयन्ति वर्ष है। इस वर्ष में हमें अपने सोच व आचरण में तत्सम्बन्धी परिवर्तन लाना चाहिये। साथ ही एकात्म मानव दर्शन की विचारधारा को समग्र आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन में स्थापित करने की भी पहल आवश्यक है।

हमारा सनातन चिन्तन यही है, जिसे ईशावास्योपनिषद में इस प्रकार व्यक्त किया गया है –

''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचजगत्यां जगत।
तेन व्यक्तेन भुजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।1।। ईशावास्योपनिषद (1)

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जो कुछ जड़ व चेतन स्वरूप में है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। उस ईश्वर को सर्वत्र साक्षी रूप देखकर इस जगत के प्रत्येक पदार्थ का अत्यंत त्याग पूर्वक (अत्यधिक परिमित मात्रा) में उपभोग करना चाहिये। यह सम्पदा किसी एक की नहीं, वरन अनन्तकाल तक यहां जन्म लेने वाले प्रत्येक प्राणी की यह धरोहर है। यही सनातन विचार एकात्म मानव दर्शन का आधार है। इसके अनुसरण से ही हम पर्यावरण को बचा सकेंगे।

ik- Hkxorh izdk'k 'kekZ

ys[kd ifjp;

प्रो. शर्मा 1978 से वाणिज्य एवं प्रबन्ध संकायों में स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन कर रहे हैं। आपने वाणिज्य एवं प्रबन्ध के क्षेत्र में स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों के लिये 11 पाठ्य पुस्तकें लिखी हैं जो हिमालय पब्लिकेशन सहित राष्ट्रीय स्तर के विविध ख्यातनाम प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित की गयी हैं। इनके मार्गदर्शन में 15 छात्रों ने पीएच.डी. स्तर का शोध किया है एवं इन्होंने 80 से अधिक अन्य शोध परियोजनाओं का निर्देशन किया है। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में इनके 230 से अधिक लेख एवं शोध पत्र प्रकाशित हुये हैं।

आर्थिक एवं वैश्विक व्यापार सम्बन्धी विषयों में रुचि होने से प्रो. शर्मा ने स्वदेशी जागरण मंच की ओर से, विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.) के पाँचवे, छठे एवं दसवें मंत्रिस्तरीय द्विवार्षिक सम्मेलन में क्रमशः 2003 में केन्कुन (मैक्सिको), 2005 में हाँगकाँग व 2015 में नैरोबी (केन्या) में भाग लिया है।

प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रो. शर्मा अन्तर्व्यक्ति व्यवहार की प्रभावशीलता, समय प्रबन्धन, संगठन विकास, शून्य आधारित बजट परिवर्तनों के प्रबन्ध, नेतृत्व विकास आदि विषयों के प्रशिक्षक भी हैं।

इन्होंने आर्थिक वैश्वीकरण, विश्व व्यापार संगठन, स्वदेशी, विनिवेश आदि विषयों इस पुस्तिका सहित पर 27 लघु पुस्तिकाएँ भी लिखी हैं। वर्तमान में प्रो. शर्मा स्वदेशी जागरण मंच के राष्ट्रीय सहसंयोजक भी हैं।

इनका ई–मेल आई.डी. bpsharma131@yahoo.co.in है।